मानव धर्मसार

प्रथम अध्यायः।

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः।

प्रतिपूज्य यथान्यायमिदम्वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

मनुजी एकाग्रचित्त बैठे हुए थे महर्षियों ने उनके पास जाके और यथान्याय प्रतिपूजा करके कहा। ॥ १ ॥

(२) भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥

अन्तरप्रभवानाञ्च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

हे भगवान सब वर्णों का और अन्तरप्रभवों का धर्म क्रम से ठीक ठीक हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥

(३) स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ॥

प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीन् श्रूयतामिति ॥ ३ ॥

जब उन महात्माओं ने महातेजस्वी मनु जी से यह पूछा तब मनु जी ने उन सब महर्षियों की अच्छी तरह पूजा करके कहा कि सुनिये ॥ ३ ॥

(४) आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ४ ॥

जो ऊंचे वर्ण के पुरुष और नीचे वर्ण की विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हो उसे अन्तरप्रभव कहते हैं ॥

(5.) Then the *sole* self-existing power undiscerned, but making this world discern five elements and other principles of *nature*.. with undiminished glory, *expanding his idea*, pelling the gloom.

(6.) He whom the mind alone can perceive, whose essence eludes the external organs, who has no visible parts, who exists from eternity,—even he, the soul of all beings, whom no being can comprehend, shone forth in person.

CHAPTER II.

(7.) The scripture, the codes of law, approved usage, and in all indifferent cases self-satisfaction, the wise have openly declared to be the quadruple description of the juridical system.

(४) यह सब जगत पहले तमोमय अर्थात् अंधेरा था न वह जाना गया था न उसका कुछ लक्षण था न वह तर्क करने के योग्य था न जानने के योग्य था मानो नींद में सोआ हुआ था ॥ ४ ॥

(५) ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तोव्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ५ ॥

(५) फिर तब महाभूतादि अर्थात् पृथ्वी अप तेज वायु आकाशादि से प्रकट है प्रभाव जिसका तम का दूर करनेवाला अव्यक्त स्वयम्भू भगवान इस जगत को व्यक्त अर्थात् प्रकट करता हुआ आप प्रकट हुआ ॥

(६) योसावतीन्द्रियग्राह्यस्सूक्ष्मोऽव्यक्तस्सनातनः ॥
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यस्सएव स्वयमुद्बभौ ॥ ६ ॥

(६) जो भगवान इन्द्रियों की शक्ति से परे सूक्ष्म अव्यक्त सनातन अचिन्त्य सर्वभूतमय है सोई आप से आप प्रकट हुआ ॥ ६ ॥

द्वितीय अध्याय ॥

(७) वेदः स्मृतिस्सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥
एतच्चतुर्विधं प्राहुस्साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

(७) वेद और स्मृति लोगों का आचार और अपने आत्मा का प्रिय ये चारों साक्षात् धर्म के लक्षण कहे हैं ॥ १२ ॥

---

(७) अपने आत्मा का प्रिय अर्थात् जिस बात में अपना अन्तःकरण कोई बुराई न देखे और भला समझे वह साक्षात् धर्म है वेद और विद्या का एक ही अर्थ है जिसे अंगरेज़ी में Knowledge नालेज कहते हैं और स्मृति स्मरण को कहते हैं श्रुति और स्मृति अर्थात् सुना हुआ और स्मरण किया हुआ ॥

(8.) Let him honour all his food, and eat it without contempt; when he sees it, let him rejoice and be calm, and pray that he may always obtain it.

(9.) He must beware of giving any man what he leaves; and of eating anything between morning and evening: he must also beware of eating too much, and of going any whither with a remnant of his food unswallowed.

(८) पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ॥
दृष्ट्वाहृष्येत्प्रसीदेच्चप्रतिनन्देच्चसर्वशः ॥ ५४ ॥

(८) प्रतिदिन भोजन का आदर करे और उसकी निन्दा कभी न करे भोजन को देखकर प्रसन्न होवे और हर्ष करे और ऐसा कहे कि हमको यह भोजन नित्य मिला करे ॥ ५४ ॥

(९) नोच्छिष्टङ्कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥
नचैवात्यशनङ्कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ५६ ॥

(९) जूठ किसी को न देना सायंकाल और प्रातः काल के मध्य में भोजन न करना (अर्थात् तीन बेर भोजन न करना) अति भोजन (अर्थात् बहुत भोजन) न करना जूठे मुंह कहीं न जाना ॥ ५६ ॥

---

(८) अर्थात् जैसा भोजन मिले वैसा ही प्रसन्न होके संतोष के साथ खा लेवे यह न कहे और न मन में लावे कि खाने को अच्छा नहीं मिला अथवा रूखा फीका है ॥

(९) अर्थात् जो मनुष्य जूठा खाने योग्य नहीं है उसे जूठा न देना अथवा अच्छा कहके जूठा न देना अथवा अच्छा दिया जा सके तो जूठा न देना परंतु डोम चमार इत्यादि जो सदा ही जूठा खाया करते हैं उनको उच्छिष्ट देने में तो कुछ अधर्म नहीं जान पड़ता क्योंकि अन्न नष्ट करने से तो उसका किसी भूखे के मुंह में पड़ जाना ही भला है ॥

(10.) Excessive eating is prejudicial to health, to fame, and to future bliss in heaven ; it is injurious to virtue, and odious among men; he must, for these reasons, by all means avoid it.

(11.) The nuptial ceremony is considered as the complete institution of women ordained for them in the *Veda*, together with reverence to their husbands, dwelling first in their father's family, the business of the house, and attention to sacred fire.

(12.) At the beginning and end of the lecture he must always clasp both the feet of his preceptor, and he must read with both his hands closed (this is called scriptural homage).

(13.) When he is prepared for the lecture, the preceptor, constantly attentive, must say—"hoa ! read;" and at the close of the lesson he must say—"take rest."

(१०) अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् ॥
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

(१०) अति भोजन, आयुष आरोग्य स्वर्ग पुण्य इन सबों के हित नहीं है और लोक में निन्दित है इसलिये अति भोजन नहीं करना ॥ ५७ ॥

(११) वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६० ॥

(११) स्त्रियों का विवाह यही वैदिक संस्कार है पति की सेवा यही गुरुकुल में वास है गृह का काम काज यही अग्नि की सेवा है ॥ ६० ॥

(१२) ब्रह्मारम्भे ऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोस्सदा ॥
संहत्य हस्तावध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१ ॥

(१२) प्रतिदिन पाठ के आरंभ में और समाप्ति में अपने दोनों हाथ से गुरु के दोनों पैर को ग्रहण करे और दोनों हाथ जोड़ के पाठ पढ़े हाथ का जोड़ना ब्रह्माञ्जलि कहाती है ॥ ७१ ॥

(१३) अध्येष्यमाणन्तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ॥
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥ ७३ ॥

---

(११) अर्थात् ब्याही हुई स्त्रियों का यही धर्म है कि पति की सेवा करें और घर का काम काज ॥
(१२) अर्थात् जिस से पाठ पढ़े उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करे और उसे पूज्य समझे ॥

(14.) In restraining the organs, which run wild among ravishing sensualities, a wise man will apply diligent care like a charioteer in managing restive horses.

(15.) The nose is the fifth, after the ears, the skin, the eyes, and the tongue; and the organs of speech are reckoned the tenth, after those of excretion and generation, and the hands and feet.

(16.) Five of them, the ear and the rest in succession, learned men have called organs of senses; and the others organs of action.

(17.) The heart must be considered as the eleventh, which, by its natural property, comprises both sense and action, and which being subdued, the two other sets, with five in each, are also controlled.

(१३) शिष्यों के पढ़ाने के समय गुरु ऐसा बोले कि अधीष्व भो (अर्थात् पढ़ो) तब शिष्य पढ़े और जब कहे कि विरामोऽस्तु (अर्थात् बस करो) तब शिष्य चुप रहे इसका तात्पर्य्य यह है कि गुरु की आज्ञा से पढ़े और चुप रहे ॥ ७३ ॥

(१४) इन्द्रियाणांविचरतांविषयेष्वपहारिषु ॥
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

(१४) विषयों से इन्द्रियों को रोके जैसे सारथी कुचाल से घोड़ों को रोकता है ॥ ८८ ॥

(१५) श्रोत्रन्त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥
पायूपस्थं हस्तपादम्वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

(१५) श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका पायु उपस्थ हस्त पाद वाणी ॥ ९० ॥

(१६) बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषाम्पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥

(१६) इन सबों में पहिली पांच ज्ञान इन्द्रिय कहाती हैं दूसरी पांच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं ॥ ९१ ॥

(१८) एकादशम्मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

---

(१३) अर्थात् जो काम करे सो गुरु की आज्ञानुसार करे ॥

(१४) हम नहीं जानते कि जो लोग हिन्दू कहलाते हैं वे मनु जी के इस वचन पर क्यों नहीं ध्यान देते ॥

(18.) A man by the attachment of his organs to sensual pleasure incurs certain guilt, but having wholly subdued them he thence attains heavenly bliss.

(19.) Desire is never satisfied with the enjoyment of desired objects; as the fire is not appeased with clarified butter; it only blazes more vehemently.

(20.) Whatever man may obtain all those gratifications or whatever man may resign them completely, the resignation of all pleasures is far better than the attainment of them.

(१७) ग्यारहवां मन है अपने गुण करके दोनों (अर्थात् पांच ज्ञान इन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय) कहाती हैं मन के जीतने से ये सब दसों जीती जाती हैं ॥ ६२ ॥

(१८) इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिन्नियच्छति ॥ ६३ ॥

(१८) इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और जो इन का निग्रह करे (अर्थात् विषयों में न लगावे) तो जीव सिद्धि को पाता है ॥ ६३ ॥

(१६) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ६४ ॥

(१६) जिस वस्तु में मन की इच्छा है उस वस्तु के मिलने से मन को तृप्ति हो सो कभी नहीं होती जैसे घी को पाके अग्नि बढ़ती ही है ॥ ६४ ॥

(२०) यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैमान् केवलांस्त्यजेत् ॥
प्रापणात्सर्वकामानाम्परित्यागो विशिष्यते ॥ ६५ ॥

(२०) जिस मनुष्य को मन का इच्छित पदार्थ सब मिलता है और जो मिले हुए पदार्थों का त्याग करता है इन दोनों में त्याग करनेवाला बड़ा है ॥ ६५ ॥

---

(१८) धन्य हैं वे महात्मा पुरुष जो इन्द्रियों का निग्रह करते हैं जो लोग केवल नाम के ब्राह्मणों को दही पेड़े खिलाके सिद्धि को ढूंढ़ते हैं उन्हें मनु जी के इस वचन को अच्छी तरह पढ़ना चाहिये ॥

(१६) अर्थात् सांसारिक वस्तु की इच्छा करना वृथा है ॥

(21.) The organs being strongly attached to sensual delights, cannot so effectually be restrained by avoiding incentives to pleasure as by a constant pursuit of divine knowledge.

(22.) To a man contaminated by sensuality neither the Vedas, nor liberality, nor sacrifices, nor strict observances, nor pious austerities ever procure felicity.

(23.) He must be considered as really triumphant over his organs, who, on hearing and touching, on seeing and tasting and smelling *what may please or offend the senses*, neither greatly rejoices nor greatly repines.

(24.) But when one among all his organs fails, by that single failure his knowledge of God passes away, as water flows through one hole in a leathern bottle.

(25.) Having kept all his members of sense and action under control, and obtained also command over his heart, he will enjoy every advantage, even though he reduce not his body by religious austerities.

(२१) न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया ॥
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥

(२१) विषयों की सेवा न करने से उनका ऐसा त्याग नहीं होता जैसा ज्ञान से होता है ॥ ९६ ॥

(२२) वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ९७ ॥

(२२) जिसका स्वभाव दुष्ट है उसको वेद दान यज्ञ नियम तप ये सब भी सिद्धि को नहीं दे सकते ॥ ९७ ॥

(२३) श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

(२३) जो मनुष्य सुनके छूके देखके भोग करके और सूंघके न हर्ष को पाता है और न इसके बिना शोक को पाता सो जितेन्द्रिय कहाता है ॥ ९८ ॥

(२४) इन्द्रियाणान्तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ९९ ॥

(२४) सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय अपने विषय में लगी तो जीव की बुद्धि जाती रहती है जैसे मशक में एक छेद होने से भी पानी निकल जाता है ॥ ९९ ॥

(२५) वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ॥
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

---

(२२) अर्थात् सुभाव का दुष्ट होना बहुत ही बुरा है इस लिये मनुष्य अपना स्वभाव अच्छा रखने का बड़ा यत्न करे ॥

(26.) Let not a sensible teacher tell any *other* what he is not asked, nor what he is asked improperly; but let him, however intelligent, act in the multitude as if he were dumb.

(27.) When a superior sits on a couch or bench let not an inferior sit on it with him, and if an inferior be sitting on a couch let him rise to salute a superior.

(28.) A youth who habitually greets and constantly reveres the aged obtains an increase of four things—life, knowledge, fame, strength.

(29.) Let a learned man ask a priest when he meets him if his devotion prospers; a warrior if he is unhurt; a merchant if his wealth is secure; and one of the servile class if he enjoys good health; *using respectively the* words, kus'alam, anámayam, kshemam, *and* árogyam.

(२५) उपाय से मन और सब इन्द्रियों को वश करके जिस में शरीर को दुःख न होने पावे ऐसी रीति से सब अर्थों को सिद्ध करे ॥ १०० ॥

(२६) नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः ॥
जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोक आचरेत् ॥ ११० ॥

(२६) बिना पूछे कोई बात किसी को न कहना अन्याय से पूछे तो भी न कहना जानता हुआ भी बुद्धिमान् लोक में जड़ की नाईं रहे ॥ ११० ॥

(२७) शय्याऽऽसनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ॥
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाऽभिवादयेत् ॥ ११६ ॥

(२७) बड़े लोग जिस आसन पर वा जिस शय्या पर बैठे हों उस पर न बैठे और आप शय्या अथवा आसन पर बैठा हो तो उठके बड़े लोगों को प्रणाम करे इससे भला होता है ॥ ११६ ॥

(२८) अभिवादनशीलस्य नित्यम्वृद्धोपसेविनः ॥
चत्वारि तस्यवर्द्धन्ते आयु र्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥

(२८) जो मनुष्य बड़े (अर्थात् बूढ़े) लोगों को नित्य प्रणाम करता है और सेवा करता है उसके विद्या आयुष यश बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥

(२६) ब्राह्मणङ्कुशलम्पृच्छे त्क्षत्रबन्धुमनामयम् ॥
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेवच ॥ १२० ॥

(२६) समागम होने पर ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से क्षेम शूद्र से आरोग्य पूछना चाहिये ॥ १२० ॥

(30.) To his uncle paternal and maternal, to his wife's father, to performers of the sacrifice, and to spiritual teachers, he must say "I am such a one"—rising up to salute them, even though younger than himself.

(31.) The sister of his mother, the wife of his maternal uncle, his own wife's mother, and the sister of his father, must be saluted like the wife of his father or preceptor; they are equal to his father's or his preceptor's wife.

(32.) The wife of his brother, if she be of the same class, must be saluted every day; but his paternal and maternal kinswomen need only be greeted on his return from a journey.

(33.) With the sister of his father and of his mother, and with his own elder sister, let him demean himself as with his mother, though his mother be more venerable than they.

(34.) Fellow-citizens are equal for ten years; dancers and singers for five; learned theologians for less

(३०) मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥
अमावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥

(३०) मामा चाचा श्वशुर ऋत्विज् (अर्थात् यज्ञ करानेवाला) गुरु ये सब अपने वय से छोटे भी हों तो इनको मैं अमुक हूं ऐसा कहकर उठके प्रणाम करे ॥ १३० ॥

(३१) मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ॥
सम्पूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्य्यया ॥ १३१ ॥

(३१) मौसी मामी सास फुफी ये सब गुरु की स्त्री के सम हैं इसलिये गुरु की स्त्री की नाईं इन सब की पूजा करना उचित है ॥ १३१ ॥

(३२) भ्रातुर्भार्य्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ॥
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥१३२॥

(३२) बड़े भाई की जो सवर्णा स्त्री है (अर्थात् दूसरे वर्ण की नहीं है) उसको पैर छूके नित्य प्रणाम करना और जाति संबंध की जो स्त्री है उसको विदेश से आके पैर छूके प्रणाम करना अपने देश में रहे तब पैर को न छूए प्रणाम मात्र करे ॥ १३२ ॥

(३३) पितुर्भगिन्यांमातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्य्यपि ॥
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ १३३ ॥

(३३) फुफी मामी बड़ी बहन इन सब को माता के समान जानना यद्यपि माता इन सबों से बड़ी है ॥ १३३ ॥

(३४) दशाब्दाख्यम्पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यङ्कलाभृताम् ॥
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥ १३४ ॥

than three; but persons related by blood for a short time, *that is, a greater difference of age destroys their equality.*

(35.) Wealth, kindred, age, moral conduct, and fifthly divine knowledge entitle men to respect; but that which is last mentioned in order is the most respectable.

(36.) Whatever man of the three highest classes possesses the most of those five, both in number and degree, that man is entitled to most respect; even a S'údra, if he have entered the tenth decade of his age.

(37.) Way must be made for a man in a wheeled carriage, or above ninety years old, or afflicted with disease, or carrying a burden; for a woman; for a priest just returned from the mansion of his preceptor; for a prince and for a bridegroom.

(३४) एक ग्राम वा एक पुर का रहनेवाला गुण से रहित हो और दश वर्ष जेठा हो तो उसके साथ मित्रता का व्यवहार होता है और गुणी हो पांच वर्ष जेठा हो तो भी मित्रता ही का व्यवहार होता है और वेद पढ़ा हो तीन वर्ष जेठा हो तो मित्रता हो होती है और संबंध में हो तो थोड़े ही काल में मित्रता होती है सर्वत्र जो काल कह आये हैं उसके ऊपर ज्येष्ठता का व्यवहार होता है ॥ १३४ ॥

(३५) वित्तम्बन्धुर्वय: कर्म्म विद्या भवति पञ्चमी ॥
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥

(३५) द्रव्य वन्धु वय कर्म विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं इस में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर बड़ा है ॥ १३६ ॥

(३६) पञ्चानान्त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ॥
यत्र स्यु: सोत्र मानार्ह:शूद्रोपि दशमीङ्गत: ॥ १३७ ॥

(३६) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जिस में इन पांचों से जितनी अधिक वस्तु रहे वह उतना मान के योग्य है नव्वे वर्ष के ऊपर वय हो तो शूद्र भी मान के योग्य है ॥ १३७ ॥

(३७) चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिण: स्त्रिय: ॥
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥ १३८ ॥

---

(३५) अर्थात् विद्या सब से बड़ी है और विद्यावान् पुरुष सब से अधिक मान्य है ॥

(३६) यदि वैश्य विद्वान् हो तो वह मूर्ख ब्राह्मण से अधिक मान्य होगा ॥

(38.) A mere *áchárya* or *a teacher of the gáyatri only* surpasses ten *upádhyáyas;* a father, a hundred such *áchâryas;* and a mother, a thousand natural fathers.

(39.) A Bráhman, who is the giver of spiritual birth, the teacher of prescribed duty, is by right called the father of an old man, though himself be a child.

(40.) Kavi, or the learned child of Angiras, taught his paternal uncles and cousins to read the Veda, and excelling them in divine knowledge said to them "little sons."

(३७) जो रथ पर चढ़ा है और जो नव्वे वर्ष के ऊपर का वयवाला है जो रोगी है जो बोझ लिये है जो स्त्री है जो ब्रह्मचारी है जो राजा है जो विवाह करने के लिये जाता है इन सब के लिये राह छोड़ देना (अर्थात् इन सबों में से कोई एक ओर से आता हो और उसके समीप दूसरी ओर से कोई आता हो तो वह इन सबों के जाने के लिये राह छोड़ देवे ॥ १३८ ॥

(३८) उपाध्यायान्दशाचार्य्य आचार्य्याणां शतम्पिता ॥
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणाऽतिरिच्यते ॥ १४५ ॥

(३८) उपाध्याय से दश गुण आचार्य्य बड़ा है आचार्य्य से सौ गुण पिता बड़ा है पिता से हज़ार गुण माता बड़ी है ॥ १४५ ॥

(३९) ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥
बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्म्मतः ॥ १५० ॥

(३९) अपने वय से छोटा है और पढ़ाता है और धर्म्म को सिखलाता है तो वह भी धर्म का पिता कहाता है ॥ १५० ॥

(४०) अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः ॥
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥ १५१ ॥

(४०) अंगिरा के लड़के ने अपने चचाओं को पढ़ाया और बेटा ऐसा कहा क्योंकि ज्ञान में वह बड़ा था इसलिये ॥ १५१ ॥

---

(३७) धन्य हैं वे जो इस वचन को मानते हैं और पिता माता की सेवा करते हैं ॥

(41.) For an unlearned man is in truth a child, and he who teaches him the *Veda* is his father; holy sages have always said child to an ignorant man and father to a teacher of scripture.

(42.) Greatness is not conferred by years, not by gray hairs, not by wealth, not by powerful kindred: the divine sages have established this rule:—"Whoever has read the *Vedas* and their *Angas* he among us is great."

(43.) A man is not therefore aged because his head is gray: him, surely, the gods considered as aged who though young in years has read *and understands the Veda.*

(44.) Good instruction must be given without pain to the instructed; and sweet gentle speech must be used by a preceptor who cherishes virtue.

(45.) He whose discourse and heart are pure and ever perfectly guarded attains all fruit arising from his complete course of studying the *Veda*.

(४१) अज्ञो भवति वै वालः पिता भवति मन्त्रदः ॥
अज्ञं हि वालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ १५३ ॥

(४१) जो कुछ नहीं जानता वही बालक है और जो मंत्र देता है वही पिता है क्योंकि जो अज्ञ है वही छोटा है और जो मंत्र देता है वही वड़ा है ॥ १५३ ॥

(४२) न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न वन्धुभिः ॥
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः सनो महान् ॥१५४ ॥

(४२) वर्ष और केश का पकना द्रव्य और संबंध इन सबों से मनुष्य वड़ा नहीं होता ऋषि लोगों ने यही धर्म कहा है कि हम सब में पढ़ानेवाला जो है सोई वड़ा है ॥ १५४ ॥

(४३) न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥
यो वै युवाप्यधीयानस्तन्देवाः स्थविरम्विदुः ॥ १५६ ॥

(४३) केश के पकने से वृद्ध नहीं कहलाता है युवा है और पढ़ा है तो उसको देवताओं ने वृद्ध कहा है ॥ १५६ ॥

(४४) अहिंसयैव भूतानां कार्य्यं श्रेयोनुशासनम् ॥
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१५९॥

(४४) जिस में किसी जीव को पीड़ा न हो ऐसा कल्याण करने वाला जो कर्म्म उस कर्म्म की आज्ञा देनी चाहिये और मधुर चिक्कण वाणी वोलनी चाहिये धर्म की इच्छा करनेवाले को ॥ १५९ ॥

(४५) यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ॥
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतम्फलम् ॥ १६० ॥

(४५) जिसकी वाणी और मन शुद्ध है और सर्व काल में रक्षित है सो ही वेदांत के फल को पाता है ॥ १६० ॥

(46.) Let not a man be querulous even though in pain; let him not injure another in deed or in thought; let him not even utter a word by which his fellow-creature may suffer uneasiness; since that will obstruct his own progress to future beatitude.

(47.) A *Brahman* should constantly shun worldly honor as he would shun poison; and rather constantly seek disrespect as he would seek nectar.

(48.) Let him abstain from honey, from flesh meat, from perfumes, from chaplets of flowers, from sweet vegetable juices, from women, from all sweet substance turned acid, and from injury to animated beings.

(४६) नारुन्तुदःस्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्म्मधीः ॥
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यान्तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

(४६) दुःखित हो तौ भी ऐसी बात न बोले कि जिस से किसी को मर्म-घाव हो, दूसरे के द्रोह कर्म में बुद्धि को न रखे जिस बात से किसी के जीव को उद्वेग हो ऐसी बात न बोले ॥ १६१ ॥

(४७) सन्मानाद् ब्राह्मणोनित्यमुद्विजेत विषादिव ॥
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १६२ ॥

(४७) सन्मान से ब्राह्मण विष की नाईं डरता रहे और अपमान को अमृत की नाईं इच्छा करे ॥ १६२ ॥

(४८) वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धमाल्यं रसान् स्त्रियः ॥
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनाञ्चैव हिंसनम् ॥ १७७ ॥

(४८) मधु मांस गंध माला रस स्त्री और शुक्त (अर्थात् जो स्वभाव से मधुर है काल पाके खट्टा हो जावे) प्राणियों का मारना इन सब को छोड़ देना चाहिये ॥ १७७ ॥

---

(४७) खेद की बात है कि अब के ब्राह्मण इस वचन पर कुछ भी ध्यान नहीं करते ॥

(४८) यह वचन और जो आगे लिखे जाते हैं ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी के लिये हैं जब कि वह गुरु के यहां पढ़ता हो ॥ मधु मांस इत्यादि का त्याग इस कारण कहा कि जिस में इन्द्रियां प्रबल न हों नहीं तो फिर पढ़ने में काहे को जा लगेगा और जूते छाते इत्यादि का त्याग इस कारण कहा कि जिस में उसे धूप में चलने का अभ्यास हो और निरा सुकुमार न बनजावे नहीं तो फिर उस से कुछ काम काहे को हो सकेगा ॥

(49.) From unguents for his limbs and from black powder for his eyes, from wearing sandals, and carrying an umbrella, from sensual desire, from wrath, from covetousness, from dancing, and from vocal and instrumental music.

(50.) From gaming, from disputes, from detraction, and from falsehood; from embracing or wantonly looking at women, and from disservice to other men.

(51.) Let him always keep his right arm uncovered, be always decently apparelled, and properly composed; and when his instructor says "be seated," let him sit opposite to his venerable guide.

(52.) In the presence of his preceptor let him always eat less, and wear a coarser mantle with worse appendages; let him rise before and go to rest after his tutor.

(४६) अभ्यङ्गमञ्जनञ्चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥
कामं क्रोधञ्च लोभञ्च नर्तनं गीतवादनम् ॥ १७८ ॥

(४६) अबटन काजल जूता छाता काम क्रोध लोभ नाच गीत बाजा ॥ १७८ ॥

(५०) द्यूतञ्च जनवादञ्च परिवादन्तथाऽनृतम् ॥
स्त्रीणां सम्प्रेक्षणालम्भमुपघातम्परस्य च ॥ १७६ ॥

(५०) जूआ झगड़ा पराये का झूठा दोष कहना स्त्रियों को देखना उन से मिलना पराये का नाश इन सब बातों से बचा रहे ॥ १७६ ॥

(५१) नित्यमुद्धृतपाणिःस्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ॥
आस्यतामिति चोक्तःसन्नासीताभिमुखङ्गुरोः ॥ १६३ ॥

(५१) ओढ़ने का जो कपड़ा है उसके बाहर दहने हाथ को सदा निकाले रहे साधु की नाईं आचार सहित रहे चंचलता को छोड़ दे बैठो ऐसी आज्ञा गुरु की हो तब उनके सन्मुख बैठे ॥ १६३ ॥

(५२) हीनान्नवस्त्रवेषःस्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
उत्तिष्ठेत्प्रथमञ्चास्य चरमञ्चैव सम्विशेत् ॥ १६४ ॥

(५२) गुरु के समीप सर्वकाल में हीन अन्न और हीन वस्त्र से और हीन स्वरूप में रहे (अर्थात् जैसा अन्न गुरु भोजन करें

---

(५२) बड़े खेद की बात है कि अब लोग इस प्रकार गुरु के घर रखके अपने लड़कों को नहीं पढ़ाते आगे श्रीकृष्णचंद्र इत्यादि ने भी इसी ढंग से विद्या उपार्जन की थी ॥

(53.) Let him not answer his teacher's orders, or converse with him reclining on a bed, sitting, nor eating, nor standing, nor with an averted face.

(54.) But let him both *answer* and converse if his preceptor sit standing up; if he stand advancing toward him; if he advance meeting him; if he run hastening after him.

(55.) If his face be averted going round to front him, *from left to right*; if he be at a little distance approaching him; if reclined bending to him; and if he stand ever so far off running toward him.

(56.) When his teacher is nigh let his couch or his bench be always placed low: when his preceptor's eye can observe him let him not sit carelessly at ease.

उस से निकृष्ट अन्न भोजन करे और जैसा वस्त्र गुरु पहने उस से निकृष्ट वस्त्र आप पहने और (जैसा स्वरूप गुरु बनाये रहें उस से निकृष्ट स्वरूप अपना बनाये रहे) गुरु के जागने से पहले जागे और गुरु के सोने के पीछे सोवे ॥ १९४ ॥

(५३) प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ॥
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः ॥ १९५ ॥

(५३) सोता आसन पर बैठा भोजन करता और विमुख (अर्थात् मुख फेरे) गुरु से न बोले और गुरु की बात न सुने किन्तु ॥१९५॥

(५४) आसीनस्य स्थितः कुर्य्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥ १९६ ॥

(५४) गुरु बैठे हों तो आप खड़ा होकर गुरु खड़े हों तो आप उनके साम्हने आनकर गुरु आते हों तो सन्मुख जाकर और गुरु दौड़ते हों तो आप भी पीछे दौड़कर बोले और बात को सुने ॥ १९६ ॥

(५५) पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ १९७ ॥

(५५) गुरु विमुख हों तो उनके सन्मुख जाके और दूर हों तो समीप जाके और सोए हों तो प्रणाम करके आज्ञा को सुने ॥१९७॥

(५६) नीचं शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १९८ ॥

(५६) गुरु के समीप अपनी शय्या और आसन को नीचे रखे गुरु के देखते हुए जैसा चाहे तैसा आसन करके न रहे (अर्थात् गुरु के साम्हने पांव फैलाके अथवा सहारा लगाके न बैठे) ॥ १९८ ॥

(57.) Let him never pronounce the mere name of his tutor, even in his absence; nor ever mimic his gait, his speech, or his manner.

(58.) In whatever place either true but censorious or false and defamatory discourse is held concerning his teacher, let him there cover his ears or remove to another place.

(59.) He must not serve his tutor by the intervention of another while himself stands aloof; nor must he attend him in a passion, nor when a woman is near; from a carriage or raised seat he must descend to salute his heavenly director.

(60.) This is likewise ordained as his constant behaviour toward his other instructors in science; toward his elder paternal kinsmen; toward all who may restrain him from sin, and all who give him salutary advice.

(५७) नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ १९९ ॥

(५७) गुरु के पीछे भी केवल उनके नाम को न लेवे और गुरु के गमन भाषण चेष्टा की नाईं आप इन तीनों कर्मों को न करे॥१९९॥

(५८) गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ॥
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यम्वा ततोन्यत: ॥ २०० ॥

(५८) जहां गुरु का सच्चा वा झूठा दोष कहा जाता हो वा निन्दा होती हो तहां कान मूंदना अथवा वहां से उठ जाना ॥ २०० ॥

(५९) दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रिया: ॥
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥ २०२ ॥

(५९) गुरु की पूजा दूर से (अर्थात् किसी से पूजा की सामग्री भेज के) न करनी और क्रुद्ध होके न करनी अपनी स्त्री के समीप हो तो भी न करनी आप सवारी पर हो वा आसन पर बैठा हो तो सवारी से उतर के और आसन को छोड़ के प्रणाम करे ॥ २०२ ॥

(६०) विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्ति: स्वयोनिषु ॥
प्रतिषेधत्सुचाधर्मान् हितञ्चोपदिशत्स्वपि ॥ २०६ ॥

(६०) इसी प्रकार से आचार्य्य को छोड़ कर उपाध्याय आदि जो दश गुरु हैं और संबंधी जो चचा आदि हैं और जो अधर्म्म से बचाते हैं और जो हित बात का उपदेश करते हैं उन सब से सदा गुरु की नाईं सारा व्यवहार रखे ॥ २०६ ॥

---

(६०) हे परमेश्वर फिर भी कभी ऐसा दिन आवेगा कि हमारे स्वदेशी इस प्रकार अपने गुरु को मानेंगे और उनकी सेवा करेंगे ॥

(61.) Toward men also who are truly virtuous let him always behave as toward his preceptor; and in like manner toward the sons of his teacher, who are entitled to respect *as older men, and are not students;* and toward the paternal kinsmen of his venerable tutor.

(62.) The son of his preceptor, whether younger or of equal age, or a student, if he be capable of teaching the *Veda*, deserves the same honor with the preceptor himself, *when he is present* at any sacrificial act.

(63.) It is the nature of women in this world to cause the seduction of men; for which reason the wise are never unguarded in the company of females.

(64.) A female, indeed, is able to draw from the right path in this life not a fool only but even a sage, and can lead him in subjection to desire or to wrath.

(65.) Let not a man, therefore, sit in a sequestered place with his nearest female relation: the assemblage of corporeal organs is powerful enough to snatch wisdom from the wise.

(६१) श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ॥
गुरुपुत्रेषु चार्य्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ २०७ ॥

(६१) जो बड़े लोग हैं और श्रेष्ठ जो गुरुपुत्र हैं और जो गुरु के बंधुजन हैं इन सब से गुरु की नाईं आचरण करे ॥ २०७ ॥

(६२) बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्म्मणि ॥
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥ २०८ ॥

(६२) गुरु का पुत्र अपने से वय में छोटा हो अथवा समान हो अथवा शिष्य हो और पढ़ाने में समर्थ हो तो यज्ञकर्म में उसका मान गुरु की नाईं करना चाहिये ॥ २०८ ॥

(६३) स्वभाव एषां नारीणां नराणामिह दूषणम् ॥
अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ २१३ ॥

(६३) मनुष्यों को दूषित करना यह नारियों का स्वभाव ही है इसलिये पण्डित लोग नारी के विषय में सावधानता से रहते हैं ॥ २१३ ॥

(६४) अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥
प्रमदा ह्युत्पथन्नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ २१४ ॥

(६४) काम क्रोध सहित हो, पण्डित हो चाहे मूर्ख हो, उसे निषिद्ध राह पर ले जाने को स्त्री समर्थ है ॥ २१४ ॥

(६५) मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ २१५ ॥

(६५) माता भगिनी लड़की इन सबों के साथ भी एकांत में न रहना इन्द्रिय सब बलवान् हैं पण्डितों को भी खींच लेती हैं ॥ २१५ ॥

(66.) As he who digs deep with a spade comes to a spring of water, so the student who humbly serves his teachers attain the knowledge which lies deep in his teacher's mind.

(67.) If a woman or a *súdra* perform any act leading to the chief temporal good, let the student be careful to emulate it; and he may do whatever gratifies his heart, unless it be forbidden by law.

(68.) The chief temporal good is by some declared to consist in virtue and wealth; by some in wealth and lawful pleasure; by some in virtue alone; by others in wealth alone; but the chief good here below is an assemblage of all three: this is a sure decision.

(69.) Therefore a spiritual and a natural father, a mother, and an elder brother, are not to be treated with disrespect, especially by a *Bráhman*, though the student be grievously provoked.

(६६) यथा खनन् खनित्रेण नरोवाय्यधिगच्छति ॥
तथा गुरुगताम्विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ २१८ ॥

(६६) जिस प्रकार कुदारी से खोदते २ जल को मनुष्य पाता है तिसी प्रकार सेवा करते २ गुरु की संपूर्ण विद्या को शिष्य पाता है ॥ २१८ ॥

(६७) यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् ॥
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥ २२३ ॥

(६७) स्त्री अथवा छोटा मनुष्य कोई अच्छी बात करता हो तो उस बात को ग्रहण करे अथवा जो कर्म्म शास्त्र से अविरुद्ध है उस में पुरुष का मन संतुष्ठ हो सो करे ॥ २२३ ॥

(६८) धर्म्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म्म एव च ॥
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥ २२४ ॥

(६८) किसी के मत में धर्म्म और अर्थ यह दोनों कल्याण करनहार हैं किसी के मत में अर्थ और काम कल्याण करनहार हैं किसी के मत में धर्म्म कल्याण करनहार है अब अपना मत कहते हैं कि धर्म्म अर्थ काम ये तीनों परस्पर अविरुद्ध हैं ॥ २२४ ॥

(६६) आचार्य्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २२६ ॥

(६६) आचार्य्य पिता जेठा सहोदर भाई इन तीनों का अपमान आप दुःखित हो तो भी न करे ब्राह्मण को तो अवश्य यह बात चाहिये ॥ २२६ ॥

---

(६८) अर्थात् धर्म्म के साथ अर्थ काम यह दोनों [illegible] हो सकते हैं इनका परस्पर विरोध नहीं है ॥

(70.) That pain and care which a mother and father undergo in producing and rearing children cannot be compensated in a hundred years.

(71.) Let every man constantly do what may please his parents, and on all occasions what may please his preceptor: when those three are satisfied, his whole course of devotion is accomplished.

(72.) Due reverence to those three is considered as the highest devotion; and without their approbation he must perform no other duty.

(73.) Since they alone are held equal to the three worlds; they alone to the three principal orders; they alone to the three *Vedas*; they alone to the three fires.

(८०) यम्मातापितरौ क्लेशं सहते सम्भवे नृणाम् ॥
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुम्वर्षशतैरपि ॥ २२७ ॥

(८०) मनुष्य के उत्पत्ति समय में जो क्लेश माता पिता सहते हैं उस से मनुष्य सौ वर्ष में भी उरिण नहीं हो सकता (इसलिये) ये देवता रूप हैं इनका अपमान कदापि न करना चाहिये) ॥ २२७ ॥

(८१) तयोर्नित्यम्प्रियङ्कुर्य्यादाचार्य्यस्य च सर्वदा ॥
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २२८ ॥

(८१) माता पिता आचार्य्य इन तीनों का प्रिय नित्य ही करना इन तीनों के संतुष्ट होने से सब तपस्या पुरी हो जाती है ॥ २२८ ॥

(८२) तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ॥
नतैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २२६ ॥

(८२) इन्हीं तीनों की सेवा परम तप है इन्हों की आज्ञा विना कोई दूसरा धर्म नहीं करना ॥ २२६ ॥

(८३) त एव हि त्रयोलोकास्त एव त्रय आश्रमाः ॥
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोग्नयः ॥ २३० ॥

(८३) तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि ये ही तीनों हैं ॥ २३० ॥

---

(८०) धन्य हैं वे लोग जो इन वचनों को याद रखके माता पिता की सेवा करते हैं ॥

(74.) All duties are completely performed by that man by whom those three are completely honored; but to him, by whom they are dishonored, all other acts of duty are fruitless.

(75.) As long as those three live so long he must perform no other duty *for his own sake*; but delighting in what may conciliate their affections and gratify their wishes, he must from day to day assiduously wait on them.

(76.) A believer in scripture may receive pure knowledge even from a *súdra*; a lesson of the highest virtue even from a *chándála*; and a woman bright as a gem even from the basest family.

(77.) Even from poison may nectar be taken; even from a child gentleness of speech; even from a foe prudent conduct; and even from an impure substance gold.

(७४) सर्वे तस्यादृता धर्म्मा यस्यैते त्रय आदृता: ॥
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याऽफला: क्रिया ॥ २३४॥

(७४) जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया उसके सब धर्म्म आदर को पाचुके और जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उसकी सब क्रिया निष्फल हुई ॥ २३४ ॥

(७५) यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषाङ्कुर्य्यात्प्रियहिते रत: ॥ २३५ ॥

(७५) जब तक ये तीनों जीते रहें तब तक स्वतंत्र होकर दूसरा धर्म न करे इन्हीं की सेवा और इन्हीं के हित और प्रिय को करता रहे ॥ २३५ ॥

(७६) श्रद्दधान:शुभाम्विद्यामाददीतावरादपि ॥
अन्त्यादपि परन्धर्म्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ २३८ ॥

(७६) श्रद्धा करके विद्या नीच से भी लेनी और परम धर्म्म चंडाल से भी लेना और स्त्री रत्न दुष्ट कुल से भी लेना ॥ २३८ ॥

(७७) विषादप्यमृतङ् ग्राह्यम्बालादपि सुभाषितम् ॥
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वत: ॥ २३९ ॥

(७७) विष बालक शत्रु अपवित्र इन सबों से क्रम करके अमृत सुंदर वचन सुंदर आचरण सुवर्ण इन सब को ग्रहण करना ॥ २३९ ॥

---

(८७) अर्थात् बालक और शत्रु भी अच्छी बात कहें अथवा अच्छा काम करें तो उसे ग्रहण करना अनादर कदापि न करना ॥

(78.) From every quarter, therefore, must be selected women bright as gems, knowledge, virtue, purity, gentle speech, and various liberal arts.

(79.) In case of necessity a student is required to learn the *Veda* from one who is not a *Bráhman*, and as long as that instruction continues to honor his instructor with obsequious assiduity.

CHAPTER III.

(80.) Married women most be honored and adorned by their fathers and brethren, by their husbands, and by the brethren of their husbands if they seek abundant prosperity.

(81.) Where females are honored there the deities are pleased; but where they are dishonored there all religious acts become fruitless.

(82.) Where female relations are made miserable, the family of him who makes them so very soon wholly perishes; but where they are not unhappy the family always increases.

(७८) स्त्रियोरत्नान्यथो विद्या धर्म्मः शौचं सुभाषितम् ॥
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२४०॥

(७८) स्त्री रत्न विद्या धर्म पवित्रता सुंदर वचन और नाना प्रकार की कारीगरी इन सब को जहां से मिले वहां से लेना ॥ २४० ॥

(७९) अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यवदध्ययनङ्गुरोः ॥ २४१ ॥

(७९) आपतकाल आके पड़े तो क्षत्रिय आदि से ब्राह्मण पढ़े जब तक पढ़े तब तक उस गुरु के पीछे चले और सेवा करे ॥ २४१ ॥

॥ तृतीय अध्याय ॥

(८०) पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ॥
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥

(८०) बहुत कल्याण की इच्छा करनेवाले जो पिता भाई पति देवर हैं सो सब वस्त्र और आभूषण से स्त्रियों की पूजा करें ॥५५॥

(८१) यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥

(८१) जिस कुल में स्त्रियों का आदर होता है उस कुल में देवता रमण करते हैं और जहां स्त्रियों का आदर नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल होती हैं ॥ ५६ ॥

(८२) शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥

(८२) जिस कुल में स्त्री दुख पाती हैं वह कुल झट पट नष्ट हो जाता है और जिस कुल में स्त्री दुख नहीं पाती हैं वह कुल सदा बढ़ता है ॥ ५७ ॥

---

(८०) अर्थात् स्त्रियों को प्रसन्न रखें ॥

(८१) अर्थात् स्त्रियों का अपमान कदापि न करना चाहिये ॥

(83.) On whatever houses the women of a family, not being duly honored, pronounce an imprecation, those houses, with all that belong to them, utterly perish, as if destroyed by a sacrifice for the death of an enemy.

(84.) Let those women, therefore, be continually supplied with ornament, apparel, and food, at festivals and at jubilees by men desirous of wealth.

(85.) In whatever family the husband is contented with his wife, and the wife with her husband, in that house will fortune be assuredly permanent.

(86.) Certainly if the wife be not elegantly attired, she will not exhilarate her husband, and if her lord want hilarity offspring will not be produced.

(८३) जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८ ॥

(८३) पूजा बिना पाये स्त्री जिस कुल को शाप देती हैं वह कुल चारों ओर से नष्ट हो जाता है ॥ ५८ ॥

(८४) तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः ॥
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

(८४) इसलिये विभूति की इच्छा करनेवाला जो पुरुष है सो वस्त्र और भोजन से सदा स्त्रियों की पूजा करता रहे ॥ ५९ ॥

(८५) सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ॥
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणन्तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥

(८५) जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुल में ध्रुव करके कल्याण है ॥ ६० ॥

(८६) यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ ६१ ॥

(८६) जब स्त्री प्रसन्न नहीं रहती तो पति भी प्रसन्न नहीं रहता और जब पति प्रसन्न नहीं रहता तो संतति भी नहीं होती ॥ ६१ ॥

---

(८२) इस्से अधिक स्त्रियों को सुखी और प्रसन्न रखने का और क्या वचन होवेगा ॥

(८४) अर्थात् स्त्रियों को गहना भोजन वस्त्र सदा देता रहे ॥

(८५) अर्थात् जहां पति स्त्री में लड़ाई झगड़ा नहीं रहता ॥ उसी जगह कल्याण है ॥

(87.) A wife being gaily adorned her whole house is embellished; but if she be destitute of ornament all will be deprived of decoration.

(88.) That order, therefore, must be constantly sustained with great care by the man who seeks unperishable bliss in heaven, and in this world pleasurable sensations, an order which cannot be sustained by men with uncontrolled organs.

(89.) Shares of oblations to the gods or to the manes utterly perish when presented through delusion of mind, by men regardless of duty, to such ignorant Bráhman as are mere ashes.

(90.) Grass and earth to sit on, water to wash the feet, and, fourthly, affectionate speech are at no time deficient in the mansions of the good, *although they may be indigent.*

(८७) स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम् ॥
तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ६२ ॥

(८७) स्त्री के प्रसन्न रहने से कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है ॥ ६२ ॥

(८८) स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्योदुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७६ ॥

(८८) परलोक में अक्षय स्वर्ग की और इस लोक में सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष उस गृहस्थाश्रम को नित्य ही धारण करे जो दुर्बल इंद्रियवालों से धारण नहीं किया जा सकता ॥ ७६ ॥

(८६) नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ॥
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ ६७ ॥

(८६) भस्मसदृश ब्राह्मण में (अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण में) देवता और पितर के निमित्त जो वस्तु अज्ञान से दाता लोग देते हैं सो सब नष्ट हो जाती है ॥ ६७ ॥

(६०) तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ॥
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १०१ ॥

(६०) तृण भूमि जल और मीठी वाणी इन वस्तुओं से सज्जनों का गृह कभी सूना नहीं रहता ॥ १०१ ॥

---

(८८) धिक् उन लोगों को जो बाल बच्चों को छोड़कर आलसी हो बाहर निकल जाते हैं अथवा छापा तिलक लगा निरुद्यमी हो बैठते हैं और घर घर भीख मांगते फिरते हैं ॥

(८६) न जानिये लोग फिर क्यों ऐसे मूर्खों को दही पेड़े खिलाते हैं ॥

(६०) अर्थात् घर आये को जल से पांव धुलाके आसन पर बैठाने और उस से मीठी बात करने में सज्जन पुरुष कभी नहीं चूकते ॥

(91.) No guest must be dismissed in the evening by a housekeeper: he is sent by the retiring sun, and whether he come in fit season or unseasonably he must not sojourn in the house without entertainment.

(92.) Let not himself eat any delicate food without asking his guest to partake of it: the satisfaction of a guest will assuredly bring the housekeeper wealth, reputation, long life, and a place in heaven.

(93.) To a bride and to a damsel, to the sick and to pregnant women, let him give food even before his guest without hesitation.

(94.) As many mouthfuls as an unlearned man shall swallow at an oblation to the gods and to ancestors, so many red-hot iron balls must the giver of the *Sráddha* swallow in the next world.

(९१) अप्रणोद्योऽतिथिःसायं सूर्य्योढो गृहमेधिना ॥
काले प्राप्त स्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥१०५॥

(९१) दिन का थका सूर्य के अस्त समय में अतिथि आया हो तो उसको भोजन जल अवश्य देना भोजन काल में प्राप्त हो अथवा दूसरे काल में प्राप्त हो परंतु भोजन किये बिना गृह में न रहने देना गृहस्थों का धर्म है ॥ १०५ ॥

(९२) न वै स्वयन्तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यञ्चातिथिपूजनम् ॥ १०६ ॥

(९२) जो वस्तु अतिथि को भोजन न करावे उस वस्तु को आप भोजन न करे और अतिथि को भोजन देना यह तो धन यश आयुष स्वर्ग इनका साधन करनेवाला है ॥ १०६ ॥

(९३) सुवासिनीः कुमारीश्च गर्भिणीरोगिणी स्त्रियः ॥
अतिथिभ्योग्र एवैता भोजयेदविचारयन् ॥ ११४ ॥

(९३) सुहागिन कुमारी रोगी गर्भिणी इन सब को अतिथि भोजन के पहिले भोजन देना इस में विचार न करना ॥ ११४ ॥

(९४) यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥ १३३ ॥

(९४) देवता और पितरों के अन्न को जो ग्रास मूर्ख ब्राह्मण भोजन करता है ते वार श्राद्ध करनेवाला अग्नि से तप्त शूल और ऋष्टि (अर्थात् दुधारा शस्त्र) और लोह पिण्ड इन सब को भोजन करता है ॥ १३३ ॥

---

(९२) अर्थात् ऐसा न करे कि अच्छा २ तो आप खा जावे और बुरा बुरा अतिथि को देवे ॥

(९४) न जानें लोग फिर क्यों मूर्ख ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और ब्राह्मण किस कारण लिखने पढ़ने में मन नहीं लगाते ॥

CHAPTER IV.

(95.) Let a *Brahman* having dwelt with a preceptor during the first quarter of a man's life pass the second quarter of human life in his own house when he has contracted a legal marriage.

(96.) Let him if he seek happiness be firm in perfect content, and check all desire of acquiring more *than he possesses*, for happiness has its roots in content, and discontent is the root of misery.

(97.) Let him not from a selfish appetite be strongly addicted to any sensual gratification; let him by improving his intellect studiously preclude an excessive attachment to such pleasures *even though lawful.*

(६५) चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यङ्गुरौ द्विजः ॥
द्वितीयमायुषो भागङ्कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥

(६५) आयुष के चार भागों में से पहिले में गुरु कुल में जाके वास करे दूसरे भाग में विवाह करके गृह में रहे (इस स्थान में यह संदेह हो सकता है कि आयुष का निश्चित काल परिणाम तो जान नहीं पड़ता चार भाग का पहिला भाग किस प्रकार से जाना जाय कदाचित् कहो कि शत वर्ष के पुरुष होते हैं यह श्रुति में लिखा है तो २५ वर्ष चौथा भाग हुआ तो मनुजी ने छत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य करना यह कहा है इसके साथ विरोध पड़ेगा इसलिये जब तक ब्रह्मचर्य्य हो सके सोई आयुष का चौथा भाग है) ॥ १ ॥

(६६) सन्तोषम्परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

(६६) परम संतोष को पाके सुखार्थी संयम (अर्थात् इंद्रिय निग्रह) करे क्योंकि सुख का जड़ संतोष है दुःख का जड़ असंतोष है ॥ १२ ॥

(६७) इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत कामतः ॥
अतिप्रसक्तिञ्चैतेषाम्मनसा सन्निवर्तयेत् ॥ १६ ॥

(६७) इच्छा से रूप रस गंध स्पर्श शब्द इन सब में प्रसक्त न होवे इन सब में अति प्रसक्ति को मन से निवृत्ति करे ॥ १६ ॥

---

(६५) ये वचन ब्राह्मणों के लिये हैं ॥

(98.) Each day let him examine those holy books which soon give increase of wisdom, and those which teach the means of acquiring wealth, those which are salutary to life, and those *Nigamas* which are explanatory of the *Veda.*

(99.) Since as far as a man studies completely the system of sacred literature, so far only can he become eminently learned, and so far may his learning shine brightly.

(100.) Let no priest who keeps house, *and is* able to *procure food*, ever waste himself with hunger; nor, when he has any substance, let him wear old or sordid clothes.

(101.) His hair, nails, and beard being clipped, his passions subdued, his mantle white, his body pure, let him diligently occupy himself in reading the *Veda*, and be constantly intent on such acts as may be salutary to him.

(102.) Let the housekeeper wake in the time sacred to Brahmi, the goddess of speech,—that is, in the last watch of the night: let him then reflect on virtue and virtuous emoluments on the bodily labour which they require, and on the whole meaning and very essence of the *Veda.*

(९८) बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १६ ॥

(९८) बुद्धि को बढ़ानेवाला जो शास्त्र है और धन को देने वाला जो शास्त्र है और हित करनेवाला जो शास्त्र है इन सब को देखना और वेदार्थ का बतलानेवाला जो ग्रंथ है उसको भी नित्य ही देखना ॥ १६ ॥

(९९) यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥
तथा तथा विजानाति विज्ञानञ्चास्य रोचते ॥ २० ॥

(९९) मनुष्य जैसा जैसा शास्त्र का अभ्यास करता है तैसा तैसा विशेष करके जानता है और उसे ज्ञान भी रुचता है ॥ २० ॥

(१००) न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधाशक्तः कथञ्चन ॥
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥

(१००) समर्थ जो स्नातक (अर्थात् गृहस्थ) है सो भूख से कभी दुःखित न होवे अर्थात् भूखा न रहे और विभव रहते जीर्ण और अस्वच्छ वस्त्र न पहने ॥ ३४ ॥

(१०१) क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥

(१०१) वेदाभ्यास में और अपने हितकर्म में नित्य युक्त रहे और केश नख दाढ़ी इन्हें छोटा किये रहे श्वेत वस्त्र पहने पवित्रता से रहे इन्द्रियों का निग्रह किये रहे ॥ ३५ ॥

(१०२) ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चानु चिन्तयेत् ॥
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥

(१०२) पहर रात्रिरहते उठके धर्म और अर्थ इन दोनों का चिन्तन करे और धर्म अर्थ का जड़ जो शरीर क्लेश है उसको भी चिन्तन करे और वेद का जो तत्व अर्थ है उसको भी चिन्तन करे ॥९२॥

(103.) Let him not bathe having just eaten, nor while he is afflicted with disease, nor in the middle of the night, nor with many clothes, nor in a pool of water imperfectly known.

(104.) Let him say what is true, but let him say what is pleasing; let him speak no disagreeable truth, nor let him speak agreeable falsehood; this is a primeval rule.

(105.) Let him not insult those who want a limb or have a limb redundant, who are unlearned, who are advanced in age, who have no beauty, who have no wealth, or who are of an ignoble race.

(106.) Let him be intent on those propitious observances which lead to good fortune, and on the discharge of his customary duties, his body and mind being pure and his members kept in subjection, let him constantly, without remissness, repeat the *Gayatri*, and present his oblation to fire.

(107.) At the beginning of each day let him discharge his feces, bathe, rub his teeth, apply a collyrium to his eyes, adjust his dress, and adore the gods.

(१०३) न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥
न वासोभिस्सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १२९ ॥

(१०३) भोजन किये हो और आतुर हो तो स्नान न करे वस्त्र सहित वारंवार भी स्नान न करे अर्द्धरात्र में और जो जलाशय जाना नहीं गया है उस में स्नान न करे ॥ १२९ ॥

(१०४) सत्यम् ब्रूयात्प्रियम् ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥
प्रियञ्च नानृतम् ब्रूयादेष धर्म्मस्सनातनः ॥ १३८ ॥

(१०४) सत्य बोलना प्रिय बोलना सत्य भी हो और प्रिय न हो तो उसको न बोलना प्रिय भी हो और सत्य न हो तो उसको भी न बोलना यह नित्य धर्म है ॥ १३८ ॥

(१०५) हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान् ॥
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ १४१ ॥

(१०५) हीन अंगवाला अधिक अंगवाला मूर्ख वृद्ध कुरूप हीन जाति हीन द्रव्यवाला इन सबों की निंदा न करनी (अर्थात् काणा है तो उसको काणा कहके न पुकारना) ॥ १४१ ॥

(१०६) मङ्गलाचारयुक्तःस्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ॥
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥

(१०६) मंगल आचार से युक्त रहे भीतर बाहर से शुद्ध रहे जितेन्द्रिय होके जप और होम करे आलस्य को छोड़ देवे ॥ १४५ ॥

(१०७) मैत्रम्प्रसाधनं स्नानं दन्तधावन मञ्जनम् ॥
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ १५२ ॥

(१०७) विष्ठात्याग देहप्रसाधन (अर्थात् शृंगार आदि) प्रातः स्नान दंतधावन अंजन देवता का पूजन इन सब कर्मों को पूर्वाह्ण काल (अर्थात् दिन के पूर्व भाग) में करना ॥ १५२ ॥

(108.) Let him humbly greet venerable men *who visit him*, and give them his own seat; let him sit near them closing the palms of his hands; and when they depart, let him walk some way behind them.

(109.) Him by whom he was invested with the sacrificial thread, him who explained the *Veda* or even a part of it, his mother and his father, natural or spiritual, let him never oppose, nor priests, nor cows, nor persons truly devout.

(110.) Denial of a future state, neglect of the scripture and contempt of the deities, envy and hatred, vanity and pride, wrath and severity, let him at all times avoid.

(111.) Let him not when angry throw a stick at another man, nor smite him with anything, unless he be a son or pupil: those two he may chastise for their improvement in learning.

(१०८) अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १५४ ॥

(१०८) अपने गृह में आये हुए वृद्धों को प्रणाम करे अपना आसन बैठने के लिये देवे हाथ जोड़ के सन्मुख खड़ा रहे चलने लगें तो पीछे पीछे (कुछ दूर) आप भी चले ॥ १५४ ॥

(१०९) आचार्यञ्च प्रवक्तारम् पितरम्मातरङ् गुरुम् ॥
नहिंस्याद्ब्राह्मणान् गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥ १६२ ॥

(१०९) आचार्य वेदाध्ययन का कहनेवाला पिता माता गुरु ब्राह्मण गो तपस्वी इन सब में से किसी को भी न मारे ॥ १६२ ॥

(११०) नास्तिक्यम्वेदनिन्दाञ्च देवतानाञ्च कुत्सनम् ॥
द्वेषन्दम्भञ्च मानञ्च क्रोधन्तैक्ष्ण्यञ्च वर्जयेत् ॥ १६३ ॥

(११०) नास्तिकपना और वेद देवताओं की निन्दा और शत्रुता दंभ और मान क्रोध और तीक्ष्णता इन सब को न करना ॥ १६३ ॥

(१११) परस्य दण्डन्नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ॥
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थन्ताड़येत्तु तौ ॥ १६४ ॥

(१११) क्रोध पाके दूसरे के मारने के लिये लाठी न चलावे और न दूसरे को किसी प्रकार से मारे परंतु पुत्र और शिष्य इन दोनों को सिखाने के लिये ताड़ना करे ॥ १६४ ॥

---

(१०९) गो से इस देश में बड़े काम निकलते हैं अत एव रक्षा के योग्य है ॥

(११०) जो लोग हिंदू कहलाते हैं उनको यह श्लोक सदा स्मरण रखना चाहिये ॥

(१११) काशी के कितने ही हिंदूओं ने इसका अर्थ विपरीत समझ रक्खा है क्योंकि उनका कर्म्म विपरीत दिखलाई देता है पंडितों को चाहिये कि इन महा पुरुषों को सीधा अर्थ समझा देवें ॥

(112.) Iniquity committed in this world produces not fruit immediately, but like the earth, in due season, and advancing by little and little it eradicates the man who committed it.

(113.) He grows rich for a while through unrighteousness, then he beholds good things, then it is that he vanquishes his foes, but he perishes at length from his whole root upwards.

(114.) Let a man continually take pleasure in truth, in justice, in laudable practices, and in purity; let him chastise those whom he may chastise in a legal mode; let him keep in subjection his speech, his arm, and his appetite.

(११२) नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥१०२॥

(११२) अधर्म शीघ्र ही नहीं फलता गौ (अर्थात् पृथ्वी) की नाईं (जैसे पृथ्वी बीज बोने से शीघ्र फल नहीं देती किंतु काल पाके देती है) अधर्म करनेवाले का धीरे धीरे सर्वनाश हो जाता है ॥ १०२ ॥

(११३) अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ १०४ ॥

(११३) अधर्म करनेवाला पहिले बढ़ता है फेर कल्याण को देखता है फेर शत्रुओं को जीतता है पश्चात् मूल सहित नष्ट हो जाता है ॥ १०४ ॥

(११४) सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ १०५ ॥

(११४) भले लोगों का आचार सत्य धर्म पवित्रता इन सब में सर्वकाल रति करे भार्या पुत्र दास छात्र इन सब को धर्म से शासन (अर्थात् ताड़न) करे वाणी बाहु उदर इनका संयम करे (वाणी का संयम सत्य भाषण से होता है बाहू के बल से किसी को पीड़ा न देवे तब बाहु का संयम होता है जो कुछ थोड़ा सा मिल जाय उसी के भोजन से संतुष्ट रहने से उदर का संयम होता है) ॥ १०५ ॥

---

(११३) अर्थात् अधर्म करनेवाला चाहे जितना बढ़े परंतु अन्त उसका बुरा है मूल सहित नष्ट हो जावेगा ॥

(115.) Wealth and pleasures repugnant to law let him shun, and even lawful acts which may cause future pain or be offensive to mankind.

(116.) Let him not have nimble hands, restless feet, or voluble eyes; let him not be crooked in his ways; let him not be flippant in his speech, nor intelligent in doing mischief.

(117.) Though permitted to receive presents, let him avoid a habit of taking them; since by taking many gifts his divine light soon fades.

(118.) The man who knows not that law, yet accepts gold or gems, land, a horse, a cow, food, raiment, oils, or clarified butter becomes mere ashes, like wood consumed by fire.

(११५) परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातान्धर्म्मवर्जितौ ॥
धर्मञ्चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ १७६ ॥

(११५) धर्म से वर्जित जो अर्थ काम है उसका त्याग करना और जो धर्म से वर्जित नहीं है परंतु लोक से विरुद्ध है और आनेवाले काल में दुःख का देनेवाला है उसका भी त्याग करना ॥ १७६ ॥

(११६) न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ॥
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥ १७७ ॥

(११६) हाथ पांव आंख वाणी इन सब को चंचल न रखे टेढ़ा न रहे परद्रोह कर्म में बुद्धि को न लगावे ॥ १७७ ॥

(११७) प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसङ्गन्तत्र वर्जयेत् ॥
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मन्तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥

(११७) दान लेने में समर्थ हो तो भी न लेवे दान लेने से ब्रह्मतेज शांत होता है ॥ १८६ ॥

(११८) हिरण्यम्भूमिमश्वङ्गामन्नम्वासस्तिलान् घृतम् ॥
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् ॥ १८८ ॥

(११८) स्वर्ण भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल घृत इन सब में से कोई एक वस्तु का प्रतिग्रह करने से मूर्ख ब्राह्मण लकड़ी की नाईं भस्म हो जाता है ॥ १८८ ॥

---

(११८) हमारी जान में जब मूर्ख ब्राह्मण यह सब देने से भस्म होता है तो देनेवाले को भी पाप लगेगा क्योंकि ब्राह्मण का भस्म करना कदापि श्रेय नहीं जो लोग घाटिये गंगा पुत्र गया वाल और पंडों को दान देते हैं उन्हें इस वचन पर ध्यान भी रखना चाहिये ॥

(119.) A twice-born man void of true devotion, and not having read the *Veda*, yet eager to take a gift, sinks down together with it as with a boat of stone in deep water.

(120.) Let no man apprized of this law present even water to a priest who acts like a cat, not to him who acts like a bittern, nor to him who is unlearned in the *Veda*.

(121.) Since property though legally gained, if it be given to either of those three, becomes prejudicial in the next world both to the giver and receiver.

(122.) As he who tries to pass over deep water in a boat of stone sinks to the bottom, so those two ignorant men, the receiver and the giver, sink to a region of torment.

(११९) अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥ १९० ॥

(११९) तप और वेद से रहित है प्रतिग्रह में रुचि रखता है ऐसा ब्राह्मण दाता सहित डूबता है जैसे जल में पत्थर की नौका ॥ १९० ॥

(१२०) न वार्य्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे ॥
न वकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ १९२ ॥

(१२०) वैडालव्रतिक वकव्रतिक और मूर्ख इन तीनों ब्राह्मणों को धर्म जाननेवाला पुरुष जल मात्र भी न देवे ॥ १९२ ॥

(१२१) त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितन्धनम् ॥
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १९३ ॥

(१२१) विधि से अर्जित धन जो इन तीनों को देवे तो परलोक में वह दानदाता और प्रतिग्रहीता दोनों के अनर्थ का हेतु होता है ॥ १९३ ॥

(१२२) यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४

(१२२) जिस प्रकार से पत्थर की बनाई हुई नाव पर चढ़कर जल में डूबता है उसी प्रकार से दाता और प्रतिग्रहीता दोनों मूर्ख नरक में डूबते हैं ॥ १९४ ॥

---

(११९) जो लोग लौकिक में नाम पाने के निमित्त इस काल के ऐसे ब्राह्मणों को कि वेद का एक अक्षर भी नहीं जानते और प्रतिग्रह में जो देते हैं, धन बांटा करते हैं उन्हों ने क्या कभी यह वचन मनुजी का नहीं सुना ॥

(१२२) हे हमारे देश बासियो कान खोलो और इसको सुनो ॥

(123.) A covetous wretch who continually displays the flag of virtue, a pretender, a deluder of the people is declared to be the man, who acts like a cat: he is an injurious hypocrite, a detractor from the merits of all men.

(124.) A twice-born man, with his eyes dejected, morose, intent on his own advantage, sly, and falsely demure, is he, who acts like a bittern.

(125.) Such priests, as live like bitterns, and such as demean themselves like cats fall by that sinful conduct into the hell called *Andhatámisra*.

(126.) Giving no pain to any creature, let him collect virtue by degrees, for the sake of acquiring a companion to the next world, as the white-ant by degrees builds his nest.

(१२३) धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ॥
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १९५ ॥

(१२३) धर्मध्वजी (अर्थात् जो नाम पाने के लिये मनुष्यों में अपने को बड़ा धार्मिक प्रसिद्ध करता है लोभी बहाने से चलनेवाला वंचना करनेवाला घातक (अर्थात् घात करनेवाला) सब की निन्दा करनेवाला ऐसा जो है सो वैडालव्रतिक कहलाता है (अर्थात् बिल्ली की नाईं उसका आचरण है) ॥ १९५ ॥

(१२४) अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥

(१२४) नीचे देखनेवाला (निठुर अर्थात् दया शून्य) अपने अर्थ के साधने में तत्पर टेढ़ा रहनेवाला झूठी नम्रतावाला ऐसा जो है सो बकव्रतिक कहलाता है (अर्थात् बकुला की नाईं उसका आचरण है) ॥ १९६ ॥

(१२५) ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्म्मणा ॥ १९७ ॥

(१२५) बकव्रतिक वैडालव्रतिक ये दोनों अपने पाप से अंधतामिस्र नाम नरक में जाते हैं ॥ १९७ ॥

(१२६) धर्म्मं शनैस्सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिका ॥
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥

१२६) किसी जीव को पीड़ा न होने पावे ऐसी रीति से परलोक के सहाय के लिये धर्म को बटोरे जैसे दीमक वल्मीक (अर्थात् अपनी बांबी) को बटोरती है ॥ २३८ ॥

(127.) For in his passage to the next world, neither his father, nor his mother, nor his wife, nor his son, nor his kinsmen, will remain in his company: his virtue alone will adhere to him.

(128.) Single is each man born; single he dies; single he receives the reward of his good, and single the punishment of his evil deeds.

(129.) When he leaves his course, like a log or a lump of clay, on the ground, his kindred retire with averted faces; but his virtue accompanies his soul.

(130.) Continually, therefore, by degrees let him collect virtue, for the sake of securing an inseparable companion; since with virtue for his guide, he will traverse a gloom, how hard to be traversed.

(131.) He who perseveres in good actions, in subduing his passions, in bestowing largesses, in gentleness of manners, who bears hardships patiently, who associates not with the malignant, who gives pain to no sentient being, obtains final beatitude.

(१२०) नामुत्र हि सहायार्थम्पिता माता च तिष्ठतः ॥
न पुत्रदारन्न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३६ ॥

(१२७) माता पिता पुत्र भार्या जाति ये सब परलोक में सहाय के लिये नहीं रहते केवल धर्म ही रहता है ॥ २३६ ॥

(१२८) एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥
एकोनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २४० ॥

(१९८) अकेला ही उत्पन्न होता है अकेला ही नष्ट होता है अकेला ही सुकृत (अर्थात् पुण्य) को भोग करता है अकेला ही दुष्कृत (अर्थात् पाप को भोगता है ॥ २४० ॥

(१२६) मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठ लोष्ठसमं क्षितौ ॥
विमुखा बान्धवा यन्तिधर्म्मस्तमनु गच्छति ॥२४१॥

(१२६) काठ और ढेले के सदृश मृत शरीर को पृथ्वी पर त्याग करके बांधव लोग सब मुंह फेर लेते हैं परंतु धर्म उसके पीछे २ लगा चला जाता है ॥ २४१ ॥

(१३०) तस्माद्धर्म्मं सहायार्थन्नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ॥
धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ २४२ ॥

(१३०) इसलिये सहाय के अर्थ नित्य ही धीरे २ धर्म को बटोरे धर्म की सहायता से दुस्तर नरक को तरता है ॥२४२॥

(१३१) दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारै रसम्वसन् ॥
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गन्तथाव्रतः ॥ २४६ ॥

(१३१) दृढकारी अर्थात् जिस क्रिया का आरंभ किया उसको समाप्त करनेवाला कोमल स्वभाववाला शीत घाम आदि जो दुख हैं उनको सहनेवाला इंद्रियों को विषयों से रोकनेवाला क्रूराचारवाले पुरुषों के साथ संबंध को छोड़देनेवाला हिंसा से निवृत्त रहनेवाला दान करनेवाला स्वर्ग को पाता है ॥ २४६ ॥

(132.) For he who describes himself to worthy men in a manner contrary to truth is the most sinful wretch in this world; he is the worst of thieves, a stealer of minds.

(133.) All things have their sense ascertained by speech; in speech they have their basis, and from speech they proceed; consequently, a falsifier of speech falsifies every thing.

CHAPTER V.

(134.) While he who gives no creature willingly the pain of confinement or death, but seeks the good of all *sentient beings*, enjoys bliss without end.

(135.) Flesh meat cannot be procured without injury to animals, and the slaughter of animals obstructs the path to beatitude; from flesh meat, therefore, let man abstain.

(१३२) योन्यथा सन्तमात्मानमन्यथासत्सु भाषते ॥
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥ २५५ ॥

(१३२) जो सज्जनों के मध्य में अपने को छिपाता है अर्थात् जैसा है वैसा नहीं बतलाता सो लोक में बड़ा पाप करनेवाला है और चोर है (अर्थात् अपनी आत्मा को चुराता है) ॥ २५५ ॥

(१३३) वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिः सृताः ॥
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २५६ ॥

(१३३) जितने अर्थ हैं सो सब वाणी में रहते हैं वाणी उन का मूल है वाणी से निकलते हैं उस वाणी को जिसने चुराया (अर्थात् जो झूठ बोला) सो सब वस्तु का चुरानेवाला हुआ ॥ २५६ ॥

॥ पञ्चम अध्याय ॥

(१३४) यो बन्धनवधक्लेशम्प्राणिनान्न चिकीर्षति ॥
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

(१३४) जो सब जीवों को बंधन और वध का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता सो सब का हितकारी है और अति सुख को पाता है ॥ ४६ ॥

(१३५) नाकृत्वा प्राणिनां हिंसाम्मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसम्विवर्जयेत् ॥४८॥

(१३५) प्राणियों की हिंसा बिना, मांस नहीं मिलता और प्राणियों का वध तो स्वर्ग के हित नहीं है इसलिये मांस का त्याग ही करना ॥ ४८ ॥

---

(१३५) अर्थात् मांस न खाना ॥

(136.) Attentively considering the formation of bodies, and the death or confinement of embodied spirit, let him abstain from eating flesh meat of any kind.

(137.) Not a mortal exists more sinful than he who, without an oblation to the manes of the gods, desires to enlarge his own flesh with the flesh of another creature.

(138.) Bodies are cleansed by water; the mind is purified by truth; the vital spirit by theology and devotion; the understanding by clear knowledge.

(139.) She must always live with a cheerful temper, with good management in the affairs of the house, with great care of the household furniture, and with a frugal hand in all her expenses.

(१३६) समुत्पत्तिश्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४६ ॥

(१३६) मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का वध और बंधन इन सब को देखकर सर्व मांस का भक्षण त्याग करे ॥ ४६ ॥

(१३७) स्वमांसम्परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ॥
अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत्॥५२॥

(१३७) पराये के मांस से अपना मांस बढ़ाने की जो पुरुष इच्छा करता है और देव और पित्रों की पूजा नहीं करता उस से अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

(१३८) अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनस्सत्येन शुध्यति ॥
विद्यातपोभ्याम्भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेनशुध्यति ॥ १०६ ॥

(१३८) जल से शरीर सत्य से मन ब्रह्म विद्या और तप से भूतात्मा (अर्थात् लिंग शरीर सहित जीवात्मा) ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ॥ १०३ ॥

(१३९) सदा प्रहृष्टया भाव्यङ्गृहकार्य्येषु दक्षया ॥
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ १५० ॥

(१३९) स्त्री सर्वकाल में हृष्ट और गृह कार्य में दक्ष रहे गृह की सब सामग्री सुंदर प्रकार से बनाये रखे और यथा योग्य व्यय करे ॥ १५० ॥

---

(१३६) अर्थात् किसी प्रकार का भी मांस न खावे ॥
(१३७) क्या पण्डितों ने मांस अहारी हिन्दुओं को यह वचन कभी नहीं सुनाया ॥

(140.) Though unobservant of approved usages, or enamoured of another woman, or devoid of good qualities, yet a husband must constantly be revered as a god by a virtuous wife.

(141.) No sacrifice is allowed to women apart from their husbands, no religious rite, no fasting; as far only as a wife honours her lord, so far is she exalted in heaven.

(142.) A faithful wife who wishes to attain in heaven the mansion of her husband must do nothing unkind to him, be he living or dead.

CHAPTER VI.

(143.) Let him not wish for death; let him not wish for life; let him expect his appointed time, as a hired servant expects his wages.

(१४०) विशील: कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्ज्जित: ॥
उपचार्य्य: स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पति: ॥ १५४ ॥

(१४०) शील से रहित पति हो अथवा दूसरी स्त्री के साथ प्रेम रखता हो किंवा गुणों से वर्जित हो तो भी जो साध्वी स्त्री हैं सो नित्य ही देवता की नाईं पति की सेवा करें ॥ १५४ ॥

(१४१) नास्ति स्त्रीणाम्पृथग्यज्ञो न व्रतन्नाप्युपोषितम् ॥
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥

(१४१) स्त्रियों का यज्ञ व्रत उपवास पृथक् नहीं है केवल पति की सेवा ही से स्वर्ग में पूजित होती हैं ॥ १५५ ॥

(१४२) पाणिग्राहस्य सा साध्वी जीवतो वा मृतस्य वा ॥
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥ १५६ ॥

(१४२) पति लोक की इच्छा करनेवाली साध्वी स्त्री जीते अथवा मरे हुए पति का अप्रिय कुछ भी काम न करे ॥ १५६ ॥

॥ षष्ठ अध्याय ॥

(१४३) नाभिनन्देत मरणन्नाभिनन्देत जीवितम् ॥
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशम्भृतको यथा ॥ ४५ ॥

(१४३) मनुष्य मरण और जीवन इन दोनों में से किसी की भी इच्छा न करे केवल काल ही की प्रतीक्षा में रहे जिस रीति से भृत्य स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है ॥ ४५ ॥

---

(१४३) अर्थात् जो कुछ ईश्वर की इच्छा है उसी में संतुष्ट रहे और आप कुछ भी न चाहे ॥

(144.) Let him advance his foot purified by looking down, *lest he touch anything impure;* let him drink water purified by straining with a cloth, lest he hurt some insect; let him, *if he choose to speak*, utter words purified by truth; let him by all means keep his heart purified.

(145.) Let him hear a reproachful speech with patience; let him speak reproachfully to no man; let him not, on account of this frail and feverish body, engage in hostility with any one living.

(146.) With an angry man let him not in his turn be angry; abused, let him speak mildly; nor let him utter a word relating to vain illusory things and confined within seven gates, the five organs of sense, the heart, and the intellect; or this world, with three above and three below it.

(147.) By the coercion of his members, by the absence of hate and affection, and by giving no pain to sentient creatures, he becomes fit for immortality.

(148.) When, having well considered the nature and consequence of sin, he becomes averse from all sensual delights, he then attains bliss in this world; bliss which shall endure after death.

(१४४) दृष्टिपूतन्न्यसेत्पादम्वस्त्रपूतञ्जलम्पिवेत् ॥
सत्यपूताम्वदेद्वाचम्मनः पूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥
(१४४) (धरती पर) देख के पांव रखे जल को कपड़े से छान के पीये सत्य करके पवित्र वाणी को बोले मन पवित्र रख के सारे काम करे ॥ ४६ ॥
(१४५) अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥
न चेमन्देहमाश्रित्य वैरङ्कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥
(१४५) दूसरे मनुष्यों की बुरी वाणी को सहे किसी का अपमान न करे किसी से वैर न करे ॥ ४७ ॥
(१४६) क्रुध्यन्तन्न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलम्वदेत् ॥
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृताम्वदेत् ॥ ४८ ॥
(१४६) अपने ऊपर कोई क्रोध भी करे तो उस पर आप क्रोध न करे अपनी निन्दा भी कोई करे तो आप उस से अच्छी वाणी से बोले सप्त द्वार से निकले हुए वचन को अनृत न बोले ॥ ४८ ॥
(१४७) इन्द्रियाणान्निरोधेन रागद्वेषक्षयेन च ॥
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥
(१४७) इंद्रियों का निरोध राग द्वेष का क्षय अर्थात् त्याग सब जीवों की अहिंसा इन से मनुष्य मोक्ष के योग्य होता है ॥ ६० ॥
(१४८) यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ॥
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ८० ॥
(१४८) जब परमार्थ से विषयों में दोष भावना करके सब वस्तु में इच्छा से रहित होता है तब इस लोक में और पर लोक में सुख को पाता है ॥ ८० ॥

(149.) By *Bráhmans*, placed in these four orders, a tenfold system of duties must ever be sedulously practised.

(150.) Content, returning good for evil, resistance to sensual appetites, abstinence from illicit gain, purification, coercion of the organs, knowledge of scripture, knowledge of the supreme spirit, veracity, and freedom from wrath form their tenfold system of duties.

CHAPTER VII.

(151.) All classes would become corrupt, all barriers would be destroyed, there would be total confusion among men, if punishment either were not inflicted or were inflicted unduly.

(१४६) चतुर्भिरपिचैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ॥
दशलक्षणको धर्मःसेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ६१ ॥

(१४६) चारों आश्रमवाले नित्य ही दश लक्षण वाला जो धर्म उसका सेवन यत्न पूर्व करें ॥ ६१ ॥

(१५०) धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ६२ ॥

(१५०) धर्म के दश लक्षण कहते हैं १ धृति (अर्थात् संतोष) २ क्षमा (अर्थात् किसी से अपकार पाकर उसका अपकार न करना और बुराई के पलटे भलाई करना) ३ दम (अर्थात् विकार करने वाला विषय पाकर मन में विकार न होने देना) ४ चोरी का त्याग ५ पवित्रता ६ विषयों से इंद्रियों का रोकना ७ शास्त्र आदि का तत्वज्ञान ८ आत्मज्ञान ९ सत्य १० क्रोध का हेतु रहते भी क्रोध न करना ॥ ६२ ॥

॥ सप्तम अध्याय ॥

(१५१) दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ॥
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

(१५१) दंड के विभ्रम से (अर्थात् दंड के योग्य कोन दंड देने से और दंड के योग्य जो नहीं है उसको दंड देने से) संपूर्ण वर्ण दोषी हो जायंगे और संपूर्ण मर्यादा टूट जायगी संपूर्ण लोक को क्षोभ हो जावेगा सब बिगड़ जावेगा ॥ २४ ॥

---

(१४६) जो लोग हिन्दू कहाते हैं वे नेक अपने मन में सोचें कि इस धर्म के सेवन का अर्थात् जिसे मनु जी ने दश लक्षण कहके बतलाया है क्या यत्न करते हैं ॥

(१५१) यह अध्याय राजा के वास्ते है ॥

(152.) From those who know the three *Vedas* let him learn the triple doctrine comprised in them, together with the primeval science of criminal justice and sound policy, the system of logic and metaphysics, and sublime theological truth: from the people he must learn the theory of agriculture, commerce, and other practical arts.

(153.) Day and night must he strenuously exert himself to gain complete victory over his own organs; since that king alone, whose organs are completely subdued, can keep his people firm to their duty.

(154.) With extreme care let him shun eighteen vices, ten proceeding from love of pleasure, eight springing from wrath, and all ending in misery.

(155.) Since a king addicted to vices arising from love of pleasure must lose both his wealth and his virtue, and addicted to vices arising from anger he may lose even his life *from the public resentment.*

(१५२) त्रैविद्येभ्यस्त्रयीम्विद्यान्दण्डनीतिञ्च शाश्वतीम् ॥
आन्वीक्षिकीञ्चात्मविद्याम्वार्त्तारम्भांश्च लोकतः ॥४३॥

(१५२) तीन विद्या के जानने वाले ब्राह्मणों से तीन विद्या और सनातन दण्ड नीति और तर्क विद्या और ब्रह्म विद्या और (धन मिलने के उपाय जानने वाले) लोगों से कृषि वाणिज्य पशु पालन आदि वार्त्ता को सीखे ॥ ४३ ॥

(१५३). इन्द्रियाणाञ्जये योगं समातिष्ठेद्दिवा निशम् ॥
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुम्प्रजाः ॥ ४४ ॥

(१५३) रात्रि दिन इन्द्रियों के जीतने में उद्योग करे जितेन्द्रिय राजा संपूर्ण प्रजा को अपने वश में रख सकता है ॥ ४४ ॥

(१५४) दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ॥
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्ज्जयेत् ॥ ४५ ॥

(१५४) काम से उत्पन्न दश वस्तु और क्रोध से उत्पन्न आठ वस्तु इनको यत्न से वर्जन करे ॥ ४५ ॥

(१५५) कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ॥
वियुज्यतेऽर्थधर्म्माभ्याङ्क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥४६॥

(१५५) काम से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से राजा धर्म और अर्थ से रहित होता है और क्रोध से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से तो आप ही नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

---

(१५३) खेद की बात है कि पण्डित लोग दान दक्षिणा मिलने की कथा तो नित्य सुनाया करते हैं परंतु ऐसे २ श्लोक हमारे राजा महाराजों को कभी नहीं समझाते ॥

(156.) Hunting, gaming, sleeping by day, censuring rivals, excess with women, intoxication, singing, instrumental music, dancing, and useless travel are the tenfold set of vices produced by love of pleasure.

(157.) Tale-bearing, violence, insidious wounding, envy, detraction, unjust seizure of property, reviling, and open assault are in like manner the eightfold set of vices to which anger gives birth.

(158.) A selfish inclination, which all wise men know to be the root of those two sets, let him suppress with diligence; both sets of vices are constantly produced by it.

(159.) That king who, through weakness of intellect, rashly oppresses his people will, together with his family, be deprived both of kingdom and life.

(१५६) मृगयाक्षो दिवा स्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ॥
तौर्य्यन्त्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥

(१५६) अहेर और पासे का खेलना दिन में सोना पर का दोष कहना स्त्री की सेवा सुरापान नाचना गाना बजाना वृथा घूमना ये दश काम से उत्पन्न हैं ॥ ४७ ॥

(१५७) पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्या सूयार्थदूषणम् ॥
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

(१५७) किसी का दोष किसी से कहना बल से काम करना कपट से वध दूसरे के गुण को न सहना पर के गुण में दोष निकालना अर्थ को चुराना अथवा देने योग्य वस्तु को न देना वाणी से कठोर बोलना दंड से ताड़न करना ये आठ क्रोध से उत्पन्न हैं ॥ ४८ ॥

(१५८) द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥

(१५८) दोनों गणों का मूल लोभ है उसको यत्न से जीतना इसके जीतने से दोनों गण जीते जाते हैं इस बात को कवियों ने कहा है ॥ ४९ ॥

(१५९) मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥
सोचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१११॥

(१५९) जो राजा मोह से, बिना देखे अपनी प्रजा को पीड़ा देता है सो थोड़े ही काल में प्राण राज्य बांधव सब सहित नष्ट हो जाता है ॥ १११ ॥

---

(१५९) क्या अच्छी बात होती जो हमारे देश के राजा लोग अपनी बड़ी बड़ी मुहरों में इस श्लोक को खुदवा लेते और सदा उसके अर्थ को चिन्तन करते रहते ॥

(160.) As by the loss of bodily sustenance the lives of animated beings are destroyed, thus by the distress of kingdoms are destroyed even the lives of kings.

CHAPTER VIII.

(161.) Either the court must not be entered by *judges, parties, and witnesses*, or law and truth must be openly declared: that man is criminal who either says nothing, or says what is false or unjust.

(162.) Where justice is destroyed by iniquity, and truth by false evidence, the judges who basely look on without giving redress shall also be destroyed.

(163.) The only firm friend who follows men even after death is justice: all others are extinct with the body.

(१६०) शरीरकर्षणात्प्राणा: क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ॥
तथा राज्ञामपि प्राणा: क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ ११२ ॥

(१६०) जिस रीति से शरीर को कष्ट देने से सब इंद्रियों को कष्ट होता है तिसी रीति से प्रजा की पीड़ा से राजा का प्राण पीड़ित होता है ॥ ११२ ॥

॥ अष्टम अध्याय ॥

(१६१) सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यम्वा समञ्जसम् ॥
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥

(१६१) या तो सभा में जाना ही नहीं और जो जाना तो यथार्थ ही बोलना जानके न बोले अथवा विरुद्ध बोले तो पापी है ॥ १३ ॥

(१६२) यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासद: ॥ १४ ॥

(१६२) जहां अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य मारा जाता है और देखने वाले उसको निवारण नहीं करते तहां सभासद भी मारे गये हैं ॥ १४ ॥

(१६३) एक एव सुहृद्धर्म्मो निधने ऽप्यनुयाति य: ॥
शरीरेण समन्नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥

(१६३) एक धर्म ही मित्र है क्योंकि वह मरे पीछे भी साथ जाता है और बाक़ी तो सब शरीर के साथ ही नष्ट होते हैं । (कदाचित् कहो कि मरे पीछे तो अधर्म भी

---

(१६०) अर्थात् राजा अपनी प्रजा को प्राण समान जाने ॥

(१६१) अर्थात् झूठ कभी न बोले और काम पड़ने पर सच को कभी न छुपावे ॥

(164.) Of injustice in decisions, one-quarter falls on the party in the cause, one-quarter on his witness, one-quarter on all the judges, and one-quarter on the king.

(165.) From the limbs, the look, the motion of the body, the gesticulation, the speech, the changes of the eye and the face are discovered the internal workings of the mind.

(166.) But a witness who knowingly says anything before an assembly of good men different from what he had seen or heard shall fall headlong after death into a region of horror, and be debarred from heaven.

साथ जाता है तो वह भी मित्र होना चाहिये तिसका समाधान यह है कि धर्म इष्ट फल देने के लिये जाता है और अधर्म अनिष्ट फल देने के लिये जाता है तो जो इष्ट फल देने के लिये जाय सोई मित्र कहलाता है और भार्या पुत्र आदि तो शरीर के साथ ही छूट जाते हैं इसलिये पुत्र आदि में स्नेह करके धर्म को न मारना ॥ १० ॥

(१६४) पादोऽधर्म्मस्य कर्त्तारम् पादः साक्षिणमृच्छति ॥
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

(१६४) अधर्म का चार भाग होता है एक एक भाग को कर्त्ता साक्षी सभासद (अर्थात् मुन्सी मुत्सद्दी इत्यादि) और राजा ये चारों पाते हैं ॥ १८ ॥

(१६५) आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतम्मनः ॥ २६ ॥

(१६५) आकार इंगित गति चेष्टा भाषित और नेत्र और मुख का विकार इन सब से भीतर का मन जाना जाता है ॥ २६ ॥

(१६६) साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ॥
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥

(१६६) जो साक्षी भले लोगों की सभा में सुनने से और देखने से विरुद्ध बोलता है (अर्थात् झूठी गवाही देता है) सो अधो मुख (अर्थात् नीचे मुख) होकर नरक में जाता है और परलोक में स्वर्ग को खोता है ॥ ७५ ॥

---

(१६६) हमारे पंडितों को चाहिये कि इन श्लोकों को एक बार उन्हें सुना देवें जो हिन्दू कहलाते हैं और नित्त गवाही देने को कचहरी में जाया करते हैं ॥

(167.) When a man sees or hears anything without being then called upon to attest it, yet, if he be *afterwards* examined as a witness, he must declare it exactly as *it was* seen, *and* as *it was* heard.

(168.) By truth is a witness cleared from sin; by truth is justice advanced: truth must, therefore, be spoken by witnesses of every class.

(169.) The soul itself is its own witness; the soul itself is its own refuge: offend not thy conscious soul, the supreme internal witness of men.

(170.) The sinful have said in their hearts: "None sees us." Yes; the gods distinctly see them, and so does the spirit within their breasts.

(171.) On all sides of a village or small town let a space be left for pasture, in breadth either four hundred

(१६७) यत्रानिबद्धोपीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन ॥
पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ ७६ ॥

(१६७) तुम इस में साक्षी हो ऐसा नहीं भी कहा गया है और व्यवहार को उसने देखा है और फिर वह बुला के पूछा जाय तो जैसा देखा है और सुना है तैसा ही कहे ॥ ७६ ॥

(१६८) सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते ॥
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥

१६८) सत्य से साक्षी पवित्र होता है और सत्य ही से धर्म्म बढ़ता है इसलिये सर्व वर्ण में साक्षी को सत्य ही बोलना चाहिये ॥ ८३ ॥

(१६९) आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ॥
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

(१६९) आत्मा का आश्रय और साक्षी आत्मा ही है इसलिये मनुष्यों के उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत करो ॥ ८४ ॥

(१७०) मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥

(१७०) पाप करने वाले यह मानते हैं कि हमको कोई नहीं देखता है पर उस पाप को देवता और अपने भीतर रहने वाला ही पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥

(१७१) धनुःशतम्परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ २३७ ॥

cubits, or three casts of a large stick; and thrice that space round a city or considerable town.

(172.) He who forgives persons in pain when they abuse him, shall on that account be exalted in heaven; but he who excuses them not, through the pride of dominion, shall for that reason sink into hell.

CHAPTER IX.

(173.) Their fathers protect them in childhood, their husbands protect them in youth; their sons protec them in age: a woman is never fit for independence.

(१०१) गो के चराने के लिये ग्राम के चारों ओर सौ धनुष तक (अर्थात् चार सौ हाथ तक) खेती न करना अथवा हाथ से लाठी फेंकना जहां जाके लाठी गिरे उतनी भूमि की तिगुनी भूमि तक खेती न करना और नगर के चारों ओर तो जो कहा है उसका तिगुना छोड़ना ॥ २३७ ॥

(१०२) य:क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ ३१३ ॥

(१०२) दूषित मनुष्य से निषिद्ध भाषण को पाके जो क्षमा करता है सो स्वर्ग में पूजित होता है और जो ऐश्वर्य पाके क्षमा नहीं करता सो नरक में जाता है ॥ ३१३ ॥

॥ नवम अध्याय ॥

(१०३) पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ॥
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥

(१०३) बाल्यावस्था में पिता युवावस्था में पति वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करता है स्त्री स्वतन्त्र (अर्थात् अपने आधीन) होने के योग्य कभी नहीं होती ॥ ३ ॥

---

(१०१) क्या अच्छी बात होती जो हिंदू ज़मींदार लोग अब भी ऐसा ही करते और अपने गाय बैलों को बढ़ाते क्योंकि खेत में गोबर अधिक पड़ने से अन्न बहुत उत्पन्न होता है और गाय बैलों की बहुतायत से दूध दही घी, और हल गाड़ी चलाने और खेत सींचने का भी सुभीता पड़ता है हमारे देश वासी जो यह बात कहते हैं कि आगे से अब पृथ्वी में अन्न बहुत कम उपजता है उसका बड़ा कारण यही चराई न रहने से गाय बैलों का घट जाना है ॥

(174.) Let the husband keep his wife employed in the collection and expenditure of wealth, in purification and female duty, in the preparation of daily food, and the superintendence of household utensils.

(175.) Drinking spirituous liquor, associating with evil persons, absence from her husband, rambling abroad, unseasonable sleep, and dwelling in the house of another are six faults which bring infamy on a married woman.

(176.) She who deserts not her lord, but keeps in subjection to him her heart, her speech, and her body shall attain his mansion in heaven, and, by the virtuous in this world, be called *Sádhvi, or good and faithful.*

(177.) But it is better that the damsel, though marriageable, should stay at home till her death, than that he should ever give her in marriage to a bridegroom void of excellent qualities.

(१७४) अर्थस्य सङ्ग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ॥
शौचे धर्म्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥ ११ ॥

(१७४) अर्थ का संग्रह व्यय कर्म (अर्थात् घर का ख़र्च) पवित्रता धर्म्म अन्न बनाना गृह की सामग्री को देखना इन सब कामों में स्त्री को अधिकार देना ॥ ११ ॥

(१७५) पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥ १३ ॥

(१७५) मद्यपान दुर्जन संग पति का विरह इधर उधर घूमना अकाल में सोना और के गृह में वास ये छः नारी को दूषण हैं ॥ १३ ॥

(१७६) पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ २९ ॥

(१७६) मन वाणी देह से संयत (अर्थात् दोष रहित) होकर जो स्त्री अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संयोग नहीं करती सो भर्तृ लोक को पाती है और इस लोक में भले लोग उसको साध्वी (अर्थात् पतिव्रता) कहते हैं ॥२९॥

(१७७) काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ॥
न चैवैनाम् प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥

(१७७) ऋतुमती भी कन्या होकर गृह में मरण तक रहे परंतु उस कन्या को गुणहीन पुरुष को कभी न देवे ॥ ८९ ॥

---

(१७४) आमदनी और ख़र्च का हिसाब स्त्री तभी रख सकेंगी और धर्म्म अधर्म्म का भेद भी तभी जानेंगी जब पढ़ी लिखी होंगी अत एव स्त्रियों को पढ़ना लिखना अवश्य सीखना चाहिये ॥

(178.) Gaming, either with inanimate or with animated things, let the king exclude wholly from his realm: both these modes of play cause destruction to princes.

(179.) Such play with dice and the like, or by matches between rams and cocks, amounts to open theft; and the king must ever be vigilant in suppressing both modes of play.

(180.) Gaming with lifeless things is known among men by the name of *dyúta*; but *samáhvaya* signifies a match between living creatures.

(181.) Let the king punish corporally at discretion both the gamester and the keeper of a gaming-house, whether they play with inanimate or animated things; and men of the servile class, who wear the *string and other* marks of the twice-born.

(182.) Even in a former creation was this *vice* of gaming found a great provoker of enmity: let no sensible man, therefore, addict himself to play, even for his amusement.

(१७८) द्यूतं समाह्वयञ्चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ॥
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥२२१॥
(१७८) द्यूत और समाह्वय इनको राजा अपने राज्य में न होने दे ये दोनों राज्य का नाश करनेवाले हैं ॥ २२१ ॥
(१७९) प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ॥
तयोर्नित्यम् प्रतं घाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२२ ॥
(१७९) ये दोनों प्रगट चोरी हैं इसलिये इन दोनों के नाश का राजा यत्न करे ॥ २२२ ॥
(१८०) अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥
प्राणिभिः क्रियमाणस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥२२३॥
(१८०) प्राण रहित (पासे आदि) से दाव लगाके क्रीड़ा करना द्यूत कहलाता है और प्राण सहित (लाल बुलबुल मेढ़े भैंसे घोड़े इत्यादि) से दाव लगा के क्रीड़ा करना समाह्वय कहलाता है ॥ २२३ ॥
(१८१) द्यूतं समाह्वयञ्चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ॥
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥२२४॥
(१८१) द्यूत और समाह्वय इन दोनों को जो करे और करावे तिस को और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के चिन्ह धारण करने वाले शूद्र को राजा नाश करे ॥ २२४ ॥
(१८२) द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरम् महत् ॥
तस्मात् द्यूतन्न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥२२७॥
(१८२) द्यूत बड़ा वैर करानेवाला है यह पूर्वकाल में भी देखा गया है इसलिये बुद्धिमान् पुरुष हंसी के अर्थ भी इसका सेवन न करे ॥२२७॥

---

(१७८) अब तो राजा भी द्यूत और समाह्वय करने लगे ॥
(१८२). आश्चर्य है कि ऐसे ऐसे वचन के रहते भी हिन्दू ब्राह्मण पण्डित और राजा लोग जूआ खेलें ॥

(183.) He who shall drop dirt on the highway, except in case of necessity, shall pay two *panas* and immediately remove the filth.

(184.) Let him, though frequently disappointed, renew his operations, how fatigued soever, again and again; since fortune always attends the man who, having begun well, strenuously renews his efforts.

(185.) All the ages, called *Satya*, *Tretá Dvápara*, and *Kali*, depend on the conduct of the king, who is declared in turn to represent each of those ages.

(१८३) समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ॥
स द्वौ कार्षापणौ दद्यान्मेध्यञ्चाशु विशोधयेत् ॥ २८२ ॥

(१८३) विना आपतकाल के राज मार्ग (अर्थात् सड़क) में अपवित्र वस्तु (अर्थात् कूड़ा कर्कट इत्यादि) डाले सो दो कार्षापण दंड देवे और अपवित्र वस्तु जो डाली है उसे उठा कर शीघ्र राज मार्ग से बाहर ले जावे ॥ २८२ ॥

(१८४) आरभेतैव कर्म्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ॥
कर्म्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ ३०० ॥

(१८४) काम करते करते थक जावे तो फेर भी कामों का आरंभ करता ही रहे क्योंकि काम करनेवालों की सेवा लक्ष्मी करती है ॥ ३०० ॥

(१८५) कृतं त्रेतायुगञ्चैव द्वापरङ्कलिरेव च ॥
राज्ञो वृत्तानि सर्व्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥

(१८५) कृत त्रेता द्वापर कलि ये ही चारों युग हैं सो नहीं किन्तु जैसा आचरण राजा करे तैसा युग होता है (अर्थात् राजा ही युग है) ॥ ३०१ ॥

---

(१८३) जो सरकार अंगरेज़ बहादुर ने इस वचन पर ध्यान धरा होता तो फिर कोई नगर हिन्दुस्तान में मैला और अपवित्र न रहता ॥

(१८४) अर्थात् काम करने से कभी न घबरावे चाहे वह सिद्ध हो चाहे न हो काम करता ही रहे यदि हमारे देशवाले इस वचन के अनुसार चलते और आलस्यी और निरुद्यमी न हो जाते तो आज इस दशा को क्यों पहुंचते ॥

(१८५) अर्थात् जहां जब राजा अच्छा है तहां तब सत युग वर्तता है ॥

(186.) Of gems, pearls, and coral, of iron, of woven cloth, of perfumes, and of liquids, let him (the Vaisya) well know the prices, both high and low.

(187.) Let him be skilled likewise in the time and manner of sowing seeds, and in the bad or good qualities of land; let him also perfectly know the correct modes of measuring and weighing.

(188.) The excellence or defects of commodities, the advantages and disadvantages of different regions, the probable gain or loss on vendible goods, and the means of breeding cattle with large augmentation.

(189.) Let him know the just wages of servants, the various dialects of men, the best way of keeping goods, and *whatever else belongs* to purchase and sale.

(१८६) मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानान्तान्तवस्य च ॥
गन्धानाञ्च रसानाञ्च विद्यादर्घबलाबलम् ॥ ३२६ ॥

(१८६) वैश्य, मणि मोती मूंगा लोहा सूत गंध रस इन सभों का देश काल समझ के न्यून अधिक मोल जाने ॥ ३२६ ॥

(१८७) बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥
मानयोगञ्च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥

(१८७) खेत का दोष और गुण बीज बोना प्रस्थ द्रोण आदि मान योग मासा तोला आदि तुला योग इन सभों का जानने वाला होवे ॥ ३३० ॥

(१८८) सारासारञ्च भाण्डानान्देशानाञ्च गुणागुणान् ॥
लाभालाभञ्च पुण्यानाम्पशूनाम्परिवर्द्धनम् ॥ ३३१ ॥

(१८८) भाण्ड (अर्थात् पात्र) का सार असार देशों का गुण अगुण बेचने योग्य वस्तुओं का लाभ अलाभ पशुओं का बढ़ना इन सब बातों को जाने ॥ ३३१ ॥

(१८९) भृत्यानाञ्च भृतिम्विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३३२ ॥

(१८९) मज़दूरों की मज़दूरी मनुष्यों की नाना प्रकार की भाषा द्रव्यों की स्थिति के उपाय और बेचना मोल लेना इन सब बातों को जाने ॥ ३३२ ॥

---

(१८९) यदि हमारे देश के बनिये महाजन दुकान्दार मनुजी के इन सब वचनों को मानें और अपने लड़कों को ये सब बातें और नाना प्रकार की भाषा सिखलावें तो फिर क्यों न धन धान्य से पूर्ण हो जावें परंतु जब उन्हों ने अपने ही धर्म शास्त्र से विरुद्ध काम करना और लड़कों को मूर्ख रखना स्वीकार किया तो फिर विपत और दरिद्र का मुख देखकर क्यों न विलपें

(190.) Pure *in body and mind*, humbly serving the three higher classes, mild in speech, never arrogant, ever seeking refuge in Brahman principally, he (the 'Sudra) may attain the most eminent class * * *

CHAPTER X.

(191.) Avoiding all injury to animated beings, veracity, abstinence from theft, and from unjust seizure of property, cleanliness, and command over the bodily organs, form the compendious system of duty which Manu has ordained for the four classes.

CHAPTER XI.

(192.) Killing a Brahman, drinking forbidden liquor, stealing * * *, adultery with the wife of a father, natural or spiritual, and associating with such as commit those offences, wise legislators must declare to be crimes in the highest degree, * * * * *

(193.) False boasting of a high tribe, malignant information before the king of a criminal *who must suffer death*, and falsely accusing a spiritual preceptor, are crimes *in the second degree, and* nearly equal to killing a *Brahman*.

(१९०) शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहङ्कृत: ॥
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ ३३५ ॥
(१९०) पवित्रता बड़ों की सेवा कोमल बोलना अहंकार न करना ब्राह्मणों के नित्य आश्रय में रहना ये कर्म शूद्रों के उत्तम जाति देने वाले हैं ॥ ३३५ ॥

॥ दशम अध्याय ॥

(१९१) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह: ॥
सर्वं सामासिकं धर्म्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु: ॥ ६३ ॥
(१९१) अहिंसा सत्य चोरी न करना शौच इन्द्रियों का रोकना यह संक्षेप धर्म चारों वर्णों का है ऐसा मनु जी ने कहा ॥ ६३ ॥

॥ एकादश अध्याय ॥

(१९२) ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागम: ॥
महांति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैस्सह ॥ ५५ ॥
(१९२) ब्रह्महत्या सुरापान चोरी गुरुपत्नी से संभोग ये चार महापातक हैं महापातकी के साथ संसर्ग करना यही पांचवां महापातक है ॥ ५५ ॥

(१९३) अनृतञ्च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥
गुरोश्चालीकनिर्बन्ध: समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५६ ॥
(१९३) नीच जाति होके हम बड़ी जाति हैं ऐसा भूठ बोलना राजा के समीप (जिस में उसका मरण हो) ऐसा किसी का दोष कहना गुरु से भूठ बोलना ये सब ब्रह्महत्या के समान हैं ॥ ५६ ॥

---

(१९०) अर्थात् इन कर्मों को जो शूद्र भी करे तो उसे उत्तम जातिवालों के समान मानना चाहिये ॥

श्रीः

दयानन्द मत मूलोच्छेद ॥

साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

की

उस मनोहर वक्तृता से भूषित जो बांकीपुर
गवर्मेण्ट कालिज में ता० १६—११—८५
को हुई थी।

खड्गविलास यन्त्रालय और क्षत्रियपत्रिका
के कार्य्यसम्पादक

बाबू साहबप्रसाद सिंह

द्वारा लिखित।

PRINTED & PUBLISHED BY BABU SAHAB PRASAD SINHA
KHADGAVILAS PRESS, BANKIPORE.
1885.

1st edition 1000 copies
price 12 annas

पहली बार १००० पुस्तक
दाम ३)

उपक्रम ।

परमेश्वर की माया कैसी अपरम्पार औ अद्भुत है जिस के तत्त्व का अणुमात्र भी पाण्डित्य किसी को नहीं है । हम लोग जब लोकदृष्टि ही से संसार की ओर देखते हैं तो उस महामाया की कैसी विलक्षण महिमा देखपड़ती है । कभी साधारण पुरुष भी दिगन्त में प्रसिद्ध होजाता है । कभी बड़े २ प्रतापी औ विद्वानों का भी नाम अस्त होने लगता है औ कभी सनातनधर्मरूप शार्दूल के ऊपर भी बंदूकें भरीजाती हैं ॥ देखिये अभी थोड़ा समय हुआ है कि दयानन्द नामक एक पुरुष होगया है इस में हमारी समझ में दोचार गुण बहुत अच्छे थे कि यह पुरुष कुछ जितेन्द्रिय था—परिश्रमी था—देशोपकार की बहुत वासना मन में रखता था—औ जैसा कुछ समझा था उस के उपदेश में पीछे पैर नहीं फेरता था । पर इस में कोई बात ऐसी न थी कि हम बहुत ही प्रशंसा करें । इस का उपदेश आल्कट साहब— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास— बा॰ केशवचन्द्र सेन— अथवा बा॰ श्रीकृष्णप्रसन्न सेन ऐसा हृदय ग्राही नहीं होता था । इस का

व्याकरण को पाण्डित्य इतने ही से प्रगट है कि प-
ण्डित अम्बिकादत्त व्यास से इस से संवत १९३७
में काशी में जब शास्त्रार्थ हुआ था तो क्षण क्षण
अशुद्ध बोलता था पर जब उस विषय में अपना पक्ष
दबा तो व्यास जी के भाषण में एक दम बोला कि
"हां हां —आप ने तं विना कहा सो सर्वथा अशु-
द्ध है" व्यास जी ने कौमुदी की पङ्क्ति कही
तो बोला कि हम कौमुदी को प्रमाण नहीं मानते
यों चतुराई से मुख्य शास्त्रार्थ का विषय बदल दिया
(ऐसीही युक्तियों से वह अपना विजयघोष इधर उध-
र करता था) व्यास जी ने समझा कि जब यह एक
विषय में दब चुका है तब दूसरे विषय में गया है औ
अब चाहता है कि कौमुदी प्रमाण कि नहीं प्रमाण
इस विषय पर शास्त्रार्थ हो उस में दबेगा तो भि-
न्न अनुमान अथवा युक्तियों से शास्त्रार्थ होगा कदा-
चित् कहबैठे कि हम इन्हें भी नहीं मानते क्यों कि
यह न्याय के ग्रन्थ में हैं तब उस का अन्त न होगा
इस लिये इस समय इस के धौर्त्य मे न आना चाहि-
ये ॥ व्यास जी नें कहा अच्छा मानिये कि हम से
एक अशुद्ध हुई पर जो वाद हो रहा है उसी पर
चलिये यदि आप से भी दैवात् एक अशुद्धि होजाय-

गी तो मेरी औ आप की पट जायगी। वेदान्ताचार्य बाबा मोहनलाल जी प्रभृति जितने सभ्य इकट्ठे थे सबने स्वीकार किया फिर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। इस पुरुष का मुख तो अशुद्धि का निधान था साथ ही उस नें कहा "द्रव्याः" व्यास जी ने साथ ही कहा कि लीजिये इस शब्द के कहने में आप व्यर्थ पुँस्त्व का धारण करते हैं नापुंसक्य स्वीकृत कीजिये औ अशुद्ध पट गई। इस का सन्यासी बाबा ने स्वीकार किया आगे चले तो झट "सेवति" बोले औ व्यास जी नें टोका थोड़ी देर में यों ही दो अशुद्धि उन की और हुई औ व्यास जी चिताते गये तब जो भीड़ की भीड़ इकट्ठी थी उस नें इन का यह ऊपर का ढकोसला देख कुछ हास्य औ स्मित किया वर्तमान भारतजीवन के सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि नें उस क्षणिक तरङ्ग को शान्त किया औ फिर शास्त्रार्थ के सुन नें की उत्कण्ठा दिखलाई पर स्वामी जी ऐसा मौका कब छोड़ने वाले थे झट रुख बदल दिया औ बोले कि वाह जी बोलने में क्या? बोलने में तो सभी से च्युति होजाती है—ए अरे—हमारे लेख में कोई अशुद्धि निकाले—बस जाओ ऐसा धूम धड़के का शास्त्रार्थ हम नहीं करना

well as kinetic energy. These are

चाहते औ झट उठ खड़े भये व्यास जी औ बाबू रामकृष्ण वर्मा नें भी साथ ही कहा कि बहुत अच्छा अब आप के लेख में ही अशुद्धि निकाली जांयगी॥ व्यास जी नें समझा कि इन के पुराने ग्रन्थ में अशुद्धि निकालने में कहीं यह न कहैं कि यह हमारा लड़कपन का लिखा है,इस लिये उसी समय नवीन एक ग्रन्थ "संस्कृत वाक्य प्रबोध' नामक दयानन्द जी का बनाया छपा था व्यास जी नें उसी में पचीसों अशुद्धियां दिखलाईं। और बाबूरामकृष्ण जी नें भूमिका आदि लिखी औ शीघ्र ही वह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ औ पहले दयानन्द जी को औ पीछे अन्यान्य आर्यसमाजी तथा उत्साहियों को दिया गया जिस के उत्तर के नाम आजतक शङ्ख ध्वनि होरही हैं जिस में ये अशुद्धियां दिखलाई गईं हैं उस ग्रन्थ का नाम "अबोधनिवारण" है।

इस को देखने से एक बालक भी समझ सकता है कि बाबा दयानन्द को सन्धिप्रकरण भी नहीं आता था।

अच्छा अब यदि इन्हीं मुण्डी बाबा का न्याय का पाण्डित्य देखते हैं तो और भी आश्चर्य मालुम होता है औ स्पष्ट प्रगट होता है कि यदि एक ए

बीए के विद्यार्थीलोग भी किञ्चित् सोचें तो इन के अनुमानों में सैकड़ों दोष निकाल सके हैं इसपर अधिक क्या लिखें इसी "पं० अम्बिकादत्तव्यास" जी के लेक्चर के देखने से मालुम होगा ॥

यदि माना जाय कि सांख्य योग वेदान्त ही के बड़े पण्डित थे तो वह भी नहीं; क्यों कि इस का विज्ञ ईश्वरप्रणिधानप्रणाली का अनभिज्ञ नहीं होसक्ता औ उस पाण्डित्य को रख कर कौन ऐसा है जो वेद के मन्त्र से रेल चलाना औ तार में खबर देना निकाले ॥

कोई कहे कि मीमांसा जानते थे तो भला ऐसा कभी होसक्ता है कि स्वयं मीमांसा शास्त्र प्रबल युक्ति यों से जिन श्रुतियों को जो अर्थ करता है आप उसी से उलटे रहे ?

साधारण लोग कहते हैं कि वे वेद अच्छा जानते थे भला कहिये तो उन्हें तो यह भी नहीं मालुम था कि वेद कहां से कहां तक है। वे कभी कहते थे कि ब्राम्हण में बहुत अंश लोगों ने बना के मिलादिये हैं जो वेद नहीं है फिर कहने लगे कि ब्राह्मण को हम वेद नहीं मानते पर उपनिषद् हैं

well as kinetic energy. These are

फिर अनेक उपनिषदों से भी निर्वेद हुआ । और भी लोगों ने वेद की पोथी में देखा होगा कि शब्दों के नीचे ऊपर लाल चिन्ह रहता है। यह चिन्ह स्वर का सूचक होता है कि किस शब्द पर औ किस अक्षर पर किस स्वर से उच्चारण करना चाहिये ये स्वर शब्दों के अर्थ को ऐसा बांध लेते हैं कि वही शब्द दूसरी व्युत्पत्ति से यदि दूसरे अर्थ में माना जाय तो झट दूसरा स्वर होजायगा औ यदि स्वर न बदलें तो अर्थ नहीं बदला जासक्ता ॥ पर अवधूत बाबा ने समासादि बदल अर्थ तो चाहे सो किया है औ स्वर पर कुछ ध्यान ही न दिया जिसका खण्डन पण्डित गोविन्दराम जी पूरा पूरा करचुके हैं ॥ फिर इन की वेदज्ञता कहाँ रही ?

यदि कोई हठ से कह उठे कि ये कोष के बड़े पण्डित थे तो इस से बढ़कर प्रमाद प्रलाप कुछ नहीं होसक्ता कि जो इतना भी नहीं जानता कि विस्तर शब्द पुंलिङ्ग है कि स्त्रीलिङ्ग औ विस्तर शब्द का अर्थ शब्दकलाप है कि बिछाने का गलीचा ? उसे कोशज्ञ कहैं ॥

वे काव्य भली भांति जानते थे यदि कोई यही भडङ्गा लगावै तो यह उनमत्तवचन माना जायगा

क्यों कि उस ने अपनी भूमिका के आरम्भ में एकठो अनुष्टुप् लिखा सो भी न बना औ अशुद्धियों से भर गया। क्या काव्य जानने वाले से एक अनुष्टुप् भी न बनैगा ?

भले ही बको कि वे संस्कृत शब्द का हिन्दी में अच्छा तरजुमा करसक्ते थे पर क्या "नित्य:" के लिये "आज का" औ "उपासीरन्" के लिये "उपासना करो" लिखने वाला झक्की न समझा जायगा ?। ऐसा तो जिस ने दो बरस भी संस्कृत पढ़ा होगा वह न कहैगा। इसी भरोसे से आप वेद का तरजुमा करने लगे थे ?

अच्छा इसी ताल पर अपने तबले की परन पूरी करो कि वे सन्यासी अच्छे थे तो यह भी कहने ही की बातें हैं क्यों कि हम लोगों ने स्वयं उन को आरम्भ में ऐसा देखा था कि केवल एक लँगोटी औ सर्वाङ्ग में धूल। पर पीछे हमीं लोगों ने दुपट्टे औ चोगे ओढ़ते तथा हाथी दांत की मूठ वाली छड़ी लें चुटीला मुरेठा बांधे टहलते देखा था। जैसा ही पहले त्याग वैसा ही पीछे संग्रह ॥

भला यही शङ्ख धुधुवाओ कि उन की बोल चाल बड़ी कोमल थी तो यह कब हो सक्ता है ? जिस स-

मय राजा शिवप्रसाद औ दयानन्द जी से प्रश्नोत्तर होते थे हम लोगों ने स्वयं देखा था कि राजा साहब की ओर से परम नम्रता से भरा निवेदन नामक लेख छपा था औ इन की ओर से सहस्रों गालियों से भरा भ्रमोच्छेद नामक लेख छपा था क्या यही भले आदमी का काम है ?

यदि इसी पर तान तोड़ो कि उनने बड़ी चतुराई से अनेक मतों का खण्डन कर सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ बनाया है औ इसी पर हम बलिहारी हैं । तो भला कहो तो उस में कौन सा नया काम किया है ? आपुस में मतों का विवाद प्रायः रहता ही है इस कारण एक मत दूसरे मत पर आक्षेप करते ही रहते हैं इन्हीं आक्षेपों को एकत्र कर औ कुछ पूर्वपर का संगठन कर कुछ छाप देना कहिये कौन बड़ा अपूर्व काम हुआ ? 'गुरु परीक्षा, 'राम परीक्षा 'मत मतनिरूपण, आदि ग्रन्थों में पादरियों ने हम लोगों के राम कृष्णादि पर बड़े बड़े आक्षेप किये हैं वेदान्तादि दर्शनों पर पादरी नीलकण्ठ शास्त्री नें जितनी युक्तियों से प्रतिवाद किया है उन से कौन नवीन बात स्वामी जी ने निकाली ? पर उस से भी प्रौढ़ भाषण में कम ही रहे जैन बौद्धादि का

खण्डन आज तक क्या नहीं किया गया है ? तब पिष्टपेषण में अपूर्वता क्या ? उस ग्रन्थ को हम लोग आद्यन्त देख गये हैं सूची में तो जान पड़ता है कि बड़े बड़े खण्डन मण्डन हैं पर आगे चल के देखते हैं तो मन मानें प्रश्न उत्तर। तनिक गम्भीर भाव से सोचिये तो 'किं केन लग्नम्'। भला देखिये तो आपनें नानक जी के मत खण्डन में लिखा है वे संस्कृत के पण्डित नहीं थे क्यों कि निर्भय के ठिकाने निर्भो लिखा है औ धनाढ्य औ रईस नहीं थे। कहिये तो सनातन आर्य गण ! इस से उन के उपदेश में क्या दोष आया ? स्वामी जी अपनी ओर तो देखते इसी ग्रन्थ की सूची में जहां मुहं से संस्कृत निकाला कि बस लीजिये बोल उठे "ईश्वरभिन्नस्था:" कहिये आप इसी भरोसे नानक जी को अपण्डित कहते हैं ? न्याय से देखिये तो उन नें भाषा में संस्कृत का अपभ्रंश शब्द कहा है वह संस्कृत शुद्ध न हो तो विशेष क्षति नहीं पर आप तो अपने को पण्डित लगा कर संस्कृत छांटने लगे हैं आप को क्या हुआ ? उन को आप नें लिखा है धनी औ रईस न थे, यह हम मत खण्डन मंडन में स्वामी जी की नयी रीति पाते हैं कि मत की

समालोचना में मताचार्य्य के कुलधन आदि की भी समालोचना कर जाते हैं क्या स्वामी जी की समझ में रईस बाबू लोग कहीं कोई अखण्डनीय है? पर शोक है कि इस पर भी आप स्थिर नहीं है ऐसा ही होता तो काशी के प्रसिद्ध रईस तथा धनिक राजा शिवप्रसादसाहब से क्यों कुस्ती लड़े थे? विशेष क्या लिखें? सूक्ष्म बुद्धिवाले तो इन मर्मों को आप समझ जांयगे औ जिन की विशाल बुद्धि है वे तो स्वामी जी का विशाल स्वरूप औ सत्यार्थप्रकाश की विशाल जिल्द देख मोहित हो ही जांयगे। इस का भी आदि से अन्त तक पूरा पूरा खण्डन शुद्ध हिन्दी भाषा में कियागया है जिस से लोगों के अनेक भ्रम दूर होंगे अभीउस के छपने का प्रबन्ध होरहा है।

यदि कोई कहै कि उन के मत में महाराणा साहब उदयपुर प्रभृति अच्छे अच्छे मान्य लोग थे तो समझ का फेर है इस विषय पर भारतसुदशाप्रवर्तक नें एक वेद झोंकझांक से ऐसा लिखा था कि सर्वसाधारण लोगों को एकाएकी यही विदित हो कि श्रीयुत महाराणा साहब बहादुर उदयपुर भी नवीन आर्यसमाज में मिलगये तथा दयानन्द

जी का जैसा ढांचा है कि जाति भेद कुछ नहीं, औ मूर्तिपूजन कुछ नहीं तीर्थयात्रा कुछ नहीं औ श्राद्धतर्पण कुछ नहीं वैसे ही हमारे जीवन धन हिन्दूपति-पातशाह महाराणा साहब का ढांचा भी बदल गया पर यह लेख देखते ही सोहित्याचार्य श्री पण्डित अम्बिकादत्त व्यास सम्पादित वैष्णवपत्रिका से न रहा गया औ इस विषय के निर्णय के अभिप्राय से उस नें निज १ भाग ७ सङ्ख्या में (मि० वैशाख शु० ११ संवत १९४०) एक साश्चर्यखेदशीर्षक प्रस्ताव लिखा पर उस पर भारतमित्र नें पूर्णतया विना समझे कुछ प्रतिवाद अपनें ३१ मार्च ८३ के पत्र में किया पर जब वैष्णवपत्रिका नें निज संख्या ८ में उस का साङ्गोपाङ्ग सन्तोष कर यों लिखा कि (मित्र भारतमित्र)

"यह आप की आर्यता है कि वैष्णवपत्रिका के भ्रमनिवारण के लिये आप नें श्रम किया पर मित्र! तत्व तो यह है कि दयानन्द सरस्वती देशदेशान्तर में प्रतिमा पूजन के खण्डकों में प्रसिद्ध हैं, जब किसी सामान्य को भी यह सुनपड़ता है कि दयानन्द अमुक नगर में गये तो इतने ही में लोग समझ लेते हैं कि वहां उक्त सरस्वती मूर्तिपूजन के विरुद्ध धूम मचाते होंगे और यों ही साधारण लोगों को जब विदित होता है कि अमुकामुक दयानन्द के शिष्य होगये तो लोग समझ जाते हैं कि

अवश्य ये भी मूर्ति निन्दक होंगये। अतएव जैसे दयानन्द त्या-ज्य वैसे ही ये भी आर्यसनातन धर्म से त्याज्य हुए। तब कहिये यदि सर्वसाधारण को शैवाविरुद्ध महावैष्णव श्रीयुत महाराणा साहब बहादुर का दयानन्द का शिष्य होना विदित किया गया (और यह स्पष्ट न कहा गया कि दयानन्द ने अपने माने का कोई उपदेश नहीं किया और मूर्त्तिपूजनादि का आन्दो-लन नहीं किया) तो सुनतेही सर्वसाधारण के मन में क्या बात आवेगी० जो मुग्ध लोग दयानन्द के मूर्त्तिसम्बन्धी कपोलक-ल्पित पर विश्वस्त हो रहे हैं उनको कैसा झूठा विश्वास होगा कि एक बड़े महाराज भी हमारी ही मण्डली के हुए और जो सनातनसद्धर्मावलम्बी हैं उनको खेद भी कैसा होगा कि एक महाराजाधिराज हाथ से निकल गये। इसलिये " मर्यादा के बाहिर क्या समझ के प्रतिष्ठा की गई" इस प्रश्न के उपक्रम से सर्वसाधारण को ठीक कारण का निर्णय करा देना यह उन लोगों का प्रधान कर्म है जिन को सर्वसाधारण का धैर्यमूलक विक्षोभ सह्य नहीं है ॥

दयानन्द सरस्वती किसी भाषा वा शास्त्र का पूरा विद्वा-न् नहीं है इसको आप भी अङ्गीकार करते हैं। पर भा० सु० प्र० ने अपने लेख से इन्हें विद्वान् झलका सर्वसाधारण को धोखा देना चाहा। तो कहिये एक साधारण बात हो तो खेद न भी हो पर यदि एक पत्र सम्पादक [जिसका मन्तव्य सहस्रों मन्तव्यों को अपना अनुयायी बनाता है] ऐसे छला-विल लेख लिखै तो क्या खेद न हो ? ।

वैष्णवपत्रिका स्वयं कहती है कि महाराजों के फलानुमेय

प्रारम्भ होते हैं तब महाराजा साहब ने गौरव की तो इसे नैतिक निदर्शन से और भी वृद्धि होती है। आप ध्यान देके देखिये गौरव पर इस पत्रिका का भी आक्षेप नहीं है। मर्यादा से बाहर प्रतिष्ठा भई सो आप को स्वीकारही है आप निज लेखान्त में लिखतेही हैं किसहन शीलतादि शब्दों से वैष्णवपत्रिका ने भी दयानन्द जीका वास्तविक स्वरूपही झलकाया है और वही हम आप और अन्यों को भी स्वीकृत है। बस शेष में वैष्णवपत्रिका आप के अपक्षपात कथन पर अधिक सन्तुष्ट होती है और आशीर्वाद देती है कि आप चिरञ्जीवी रहैं और निज कर्तव्य को न भूलें॥

प्रिय पाठकगण! यदि आप सुनें कि अमुक पुरुष एक गवैये से शिक्षा लेता तथा उपदिष्ट होता है तो आप अवश्य समझैंगे कि वह गाना सीखता होगा पर जब आप को किसी प्रकार विदित होगा कि उस गवैये ने कुछ गणित सिखलाया तबही आप का दूसरा भाव होगा। सो अब आप निश्चय समझिये कि जैसे दयानन्द सरस्वती म्लेच्छ बहुल देशों में उच्छृङ्खल हो "दुरगा मुरगा" जो चाहै सो बकते थे वैसे उदयपुर में इनने नहीं बका और मूर्त्ति सम्बन्धी विषय छोड़ औरर राजधर्मादि कहे और उपदेश दिये। तो मूर्त्ति खण्डक अथवा पण्डितम्मन्य दयानन्द को नहीं पर नीतिधर्मोपदेशक दयानन्द को श्रीयुत ने सन्मान दिया और हम आप भी अनेक धन्यवाद देते हैं॥"॥

तब यद्यपि इतना सुन भारतमित्रनें स्वीकारकिया पर कुछ काल के अनन्तर आर्यसमाज के प्रधान बाबू समर्थदानजी से न रहागया औ उन नें दयानन्द जी

के गुणों का पुनः चर्वितचर्वण गान करके वैष्णवप-त्रिका पर आक्षेप किया तब यद्यपि वैष्णवपत्रिका के पूर्व ही लेख से यह बात स्पष्ट थी पर अनुग्रह कर के वै॰ प॰ नें फिर अपनी उसी वर्ष की १०संख्या में "चिरंजीव चिरंजीव" इस शीर्षक लेख में——

"इदमीदृगऽनीदृगाशयः प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः"

"बाबू समर्थदान जी! आपने केवल वैष्णवपत्रिका के नि-वेदनार्थ अति परिश्रम से भारतमित्र में दयानन्दजी के गुणा-नुवाद गाये हैं आप धन्य हैं। यह आप के ऊपर श्रीद-यानन्द सरस्वती जी के पूरे अनुग्रह का फल विदित होता है कि आप भी परिश्रमी और परोपकारी हो चले।

अच्छा आयुष्मन्! तनिक जी लगाकर सुनिये! मानिये कि किसी श्रीमान् के यहां एक पुरुष रात को द्वारपाल का काम करता है पर दो पहर को वही प्रति दिन पाक भी बनाता है। दैवात् किसी दिन प्रमाद से द्वारपाल द्वार पर सो गया तो उस द्वारपाल को दण्ड हुआ पर उसी दिन उसने पाक क्रिया में बहुत कौशल दिखलाया सो उस पाककर्त्ता की बहुत प्रशं-सा हुई और पारितोषिक मिला। देखिये यहां एक ही पुरुष दो काम से दो व्यक्ति की भांति व्यवहृत होता है अर्थात् यद्यपि वह एकही है पर पाक के गुणों से द्वारपाल गुणी नहीं कहला सक्ता और द्वारपाल के दोषों से पाककर्त्ता दोषी न-हीं ठहराया जासकता। क्योंकि पाककर्त्ता और द्वारपाल ये दो पुरुष समझे जाते हैं। (जसिस् नौरिस् और मिस्टर

नौरिस् हो समभा के अमृतबाजारपत्रिका ने लम्बा लेख लिखा है सो कदाचित् आप ने देखा हो) ।

ऐसेही इन दिनों दयानन्द भी दो हैं एक जो " स्त्रियों को ११ विवाह तक करना, जातिभेद कुछ नहीं सब एक में हिलमिल घमचोल कर देना, शूद्रों को (कहते हैं कि शूद्र का अर्थ है महा मूर्ख जो पढ़ लिख न सके) वेद पढ़ाना, देवमूर्त्तियों का पूजन न करना, पुराणादि गप्प है, मन्दिर तीर्थादि ब्राह्मणों का छल है, वेद में लिखा है कि रेल चलाना तार चलाना" इत्यादि कोलाहल मचाते हैं और जो वेदभाष्य के नाम से महाअशुद्ध गप शप लिख कर पांच सवार में एक सवार बनते हैं और जिनके लिये दयानन्दमुखचपेटिका, अबोधनिवारण, महामोहविद्रावणादि अनेक ग्रन्थ बने हैं ।

दूसरे दयानन्द वो हैं जो एक उत्साही, परिश्रमी, सहनशील, प्रसन्नवदन, ऐक्यवर्द्धनतत्पर, अस्तेय, राजनीति आदि के उपदेशक, वैदिकचर्चा के जीर्णोद्धारकारक तथा अत्यन्त उद्योगी और साहसी हैं ।

श्रीयुत शुभोदर्क समर्थदान जी ! चाहे वैष्णवपत्रिका हो अथवा कोई भी आर्यसनातनधर्मावलम्बी हो पर प्रथम दयानन्द के आचरण से तो कोई भी प्रसन्न न होगा क्योंकि इस दयानन्द ने "येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषोभवेत्" यह मूलमन्त्र थामा है, एक स्थान में निरुत्तर होना तो दूसरे स्थान में कोलाहल करना यह रावणी सम्प्रदाय पकड़ी है, अशुद्ध लिख२ संस्कृत भाषा का नाश करना प्रारम्भ किया है, चिट्ठी सर्टिफिकेट दिखला २ मुग्धों को ठगना अपना प्रधान कृत्य समझा है सभ्य पुरुषों के साथ भी असभ्यता का भाषण करनाही जागते

स्थानापन्न किया है। इत्यादि यदि श्रीयुत कुमार श्रीकृष्णप्रसेन-सेन महोदय अथवा श्रीयुत राममिश्र शास्त्री महाशय ऐसे सभ्य पुरुष मध्यस्थ हों तो हम स्वयं पत्र द्वारा अथवा साक्षात् बड़े हर्ष के साथ इस दयानन्द की शङ्काओं के समाधान करने को उद्यत हैं।"

इत्यादिबहुत दिखलाया जिसे पढ़ उन नें भी गरुड़ मुद्रा ही की ॥ उदयपुर के राजकीय पत्र "सज्जन कीर्ति सुधाकर" नें स्वयं यह कई बार झलकाया है कि सरस्वती नें यहां राजधर्म भाषोन्नति आदि छोड़ और कुछ न कहा औ उसी वर्ष महाराज बहादुर के जलझुलनी एकादशी आदि का अति विस्तार से वर्णन किया औ मिति १७—६—८३ में लिखा कि "जो मूर्ति को माने ही नहीं उन के नास्तिक होने में क्या बाधक रहा'! इत्यादि ॥ अधिक क्या इस छोटे से विषय पर लिखा जाय श्री महाराणा साहब ने जो स्वामीजी को पत्र लिखा उस के ऊपर भी निज पूजनीय मूर्ति का स्मरण लिखा "श्री मदेक लिङ्गेश्वरो जयति" (भा॰मि॰ ता: १० मई ८३ देखिये) फलतः यही समझ लीजिये कि समुद्र मूठी मे नहीं छिपसकता जिसे सन्देह हो अबही निर्णय करले कि उदयपुर से मूर्ति पूजादि उठादिया गया कि नहीं !

भया प्यारे यदि कोई यही ढोल वजावे कि हम ने दयानन्द दिग्विजय नाम ग्रन्थ देखा अब हम और कुछ नहीं सुनना चाहते बस इसी पर कुर्बान हैं तो इस का भी वृत्तान्त सुनिये पर इस पर कुछ कहते हमें बड़ा हास्य होता है कि पूर्व में जिस की विद्या का ऐसा चरित कह आये हैं उस पुरुष का दिग्विजयी होने का जिन शिष्यों ने घण्टा घोष किया औ नगारखाना खोल के वैठ गये वे भी दाल भात खाने वाले दो ही हाथ पैर के मनुष्य हैं कि कोई दिव्यभोगी चतुर्भुजी मूर्ति हैं ? हम क्या इस विषय पर लिखैं औ क्या न लिखैं ? यह उन आर्य समाजियों का प्रत्यक्ष आंख में धूल डालना औ विचारे अल्पज्ञ लोगों को वञ्चित करना है। इस ग्रन्थ को देख दयानन्द जी के आडम्बर के ज्ञाता लोग तो अवश्य ही हंसैंगे पर हां विचारे थोड़ी वुद्धि के ग्राम्य जन अथवा केवल अङ्गरेजी फ़ारसी के अभ्यास से निज धर्म न जान नें के कारण जिन की वुद्धि पहलेही से कवड्डी खेलती है औ स्नान पूजा आचार आदि से गला छुड़ाना चाहती है वे सनातन मर्यादा के अविश्वासी लोग आश्चर्यपूर्वक प्रसन्न होंगे। हम यथार्थभाव से भी कहैं गे तो नवीन आर्यसमाजियों को